श्री चन्द्रर्षि महत्तर प्रणीत

पंचसंग्रह

[उदीरणाकरण-प्ररूपणा अधिकार]

(मूल, शब्दार्थ, विवेचन युक्त)

हिन्दी व्याख्याकार

श्रमणसूर्य प्रवर्तक मरुधरकेसरी

श्री मिश्रीमल जी महाराज

दिशा निदेशक

मरुधरारत्न प्रवर्तक मुनिश्री रूपचन्दजी म० 'रजत'

सम्प्रेरक

मरुधराभूषण श्री सुकनमुनि

सम्पादक

देवकुमार जैन

प्रकाशक

आचार्य श्री रघुनाथ जैन शोध संस्थान, जोधपुर

☐ श्री चन्द्रर्षिमहत्तर प्रणीत
पचसग्रह (८)
(उदीरणाकरण-प्ररूपणा अधिकार)

☐ हिन्दी व्याख्याकार
स्व० मरुधरकेसरी प्रवर्तक मुनि श्री रूपचन्द जी महाराज

☐ दिशा निदेशक
मरुधरारत्न प्रवर्तक मुनि श्री रूपचन्द जी म० 'रजत'

☐ सयोजक सप्रेरक
मरुधराभूषण श्री सुकनमुनि

☐ सम्पादक
देवकुमार जैन

☐ प्राप्तिस्थान
श्री मरुधरकेसरी साहित्य प्रकाशन समिति
पीपलिया बाजार, ब्यावर (राजस्थान)

☐ प्रथमावृत्ति
वि० स० २०४२ श्रावण, अगस्त १९८६

लागत से अल्पमूल्य १०/- दस रुपया सिर्फ

☐ मुद्रण
श्रीचन्द सुराना 'सरस' के निदेशन मे
एन० के० प्रिंटस, आगरा

प्रकाशकीय

जैनदर्शन का मर्म समझना हो तो 'कर्मसिद्धान्त' को समझना अत्यावश्यक है। कर्मसिद्धान्त का सर्वांगीण तथा प्रामाणिक विवेचन 'कर्मग्रन्थ' (छह भाग) मे बहुत ही विशद रूप से हुआ है, जिनका प्रकाशन करने का गौरव हमारी समिति को प्राप्त हुआ। कर्मग्रन्थ के प्रकाशन से कर्मसाहित्य के जिज्ञासुओ को बहुत लाभ हुआ तथा अनेक क्षेत्रो से आज उनकी माग बराबर आ रही है।

कर्मग्रन्थ की भाँति ही 'पचसग्रह' ग्रन्थ भी जैन कर्मसाहित्य मे अपना महत्त्वपूर्ण स्थान रखता है। इसमे भी विस्तारपूर्वक कर्मसिद्धान्त के समस्त अगो का विवेचन हुआ है।

पूज्य गुरुदेव श्री मरुधरकेसरी मिश्रीमल जी महाराज जैनदर्शन के प्रौढ विद्वान और सुन्दर विवेचनकार थे। उनकी प्रतिभा अद्भुत थी, ज्ञान की तीव्र रुचि अनुकरणीय थी। समाज मे ज्ञान के प्रचार-प्रसार मे अत्यधिक रुचि रखते थे। यह गुरुदेवश्री के विद्यानुराग का प्रत्यक्ष उदाहरण है कि इतनी वृद्ध अवस्था मे भी पचसग्रह जैसे जटिल और विशाल ग्रन्थ की व्याख्या, विवेचन एव प्रकाशन का अद्भुत साहसिक निर्णय उन्होने किया और इस कार्य को सम्पन्न करने की समस्त व्यवस्था भी करवाई।

जैनदर्शन एव कर्मसिद्धान्त के विशिष्ट अभ्यासी श्री देवकुमार जी जैन ने गुरुदेवश्री के मार्गदर्शन मे इस ग्रन्थ का सम्पादन कर प्रस्तुत किया है। इसके प्रकाशन हेतु गुरुदेवश्री ने प्रसिद्ध साहित्यकार श्रीयुत श्रीचन्द जी सुराना को जिम्मेदारी सौपी और वि० स० २०३९ के आश्विन मास मे इसका प्रकाशन-मुद्रण प्रारम्भ कर दिया

गया। गुरुदेवश्री ने श्री सुराना जी को दायित्व सौंपते हुए फरमाया 'मेरे शरीर का कोई भी भरोसा नही है, इस कार्य को शीघ्र सम्पन्न कर लो'। उस समय यह बात सामान्य लग रही थी। किसे ज्ञात था कि गुरुदेवश्री हमे इतनी जल्दी छोडकर चले जायेंगे। किंतु क्रूर काल की विडम्बना देखिये कि ग्रन्थ का प्रकाशन चालू ही हुआ था कि १७ जनवरी १६८४ को पूज्य गुरुदेव के आकस्मिक स्वर्गवास से सर्वत्र एक स्तब्धता व रिक्तता-सी छा गई। गुरुदेव का व्यापक प्रभाव समूचे सघ पर था और उनकी दिवगति से समूचा श्रमणसघ ही अपूरणीय क्षति अनुभव करने लगा।

पूज्य गुरुदेवश्री ने जिस महाकाव्य ग्रन्थ पर इतना श्रम किया और जिसके प्रकाशन की भावना लिये ही चले गये, वह ग्रन्थ अब पूज्य गुरुदेवश्री के प्रधान शिष्य मरुधराभूषण श्री सुकनमुनि जी महाराज के मार्गदर्शन मे सम्पन्न हो रहा है, यह प्रसन्नता का विषय है। श्रीयुत सुराना जी एव श्री देवकुमार जी जैन इस ग्रन्थ के प्रकाशन-मुद्रण सम्बन्धी सभी दायित्व निभा रहे हैं और इसे शीघ्र ही पूर्ण कर पाठको के समक्ष रखेंगे, यह दृढ विश्वास है।

आचार्य श्री रघुनाथ जैन शोध सस्थान अपने कार्यक्रम मे इस ग्रन्थ को प्राथमिकता देकर सम्पन्न करवाने मे प्रयत्नशील है।

आशा है जिज्ञासु पाठक लाभान्वित होगे।

मन्त्री

आचार्य श्री रघुनाथ जैन शोध सस्थान

जोधपुर

आमुख

जैनदर्शन के सम्पूर्ण चिन्तन, मनन और विवेचन का आधार आत्मा है। आत्मा स्वतन्त्र शक्ति है। अपने सुख-दुःख का निर्माता भी वही है और उसका फल-भोग करने वाला भी वही है। आत्मा स्वय मे अमूर्त है, परम विशुद्ध है, किन्तु वह शरीर के साथ मूर्तिमान बनकर अशुद्धदशा मे ससार मे परिभ्रमण कर रहा है। स्वय परम आनन्दस्वरूप होने पर भी सुख-दुख मे चक्र मे पिस रहा है। अजर-अमर होकर भी जन्म-मृत्यु के प्रवाह मे बह रहा है। आश्चर्य है कि जो आत्मा परम शक्तिसम्पन्न है, वही दीन-हीन, दु खी, दरिद्र के रूप मे ससार मे यातना और कष्ट भी भोग रहा है। इसका कारण क्या है ?

जैनदर्शन इस कारण की विवेचना करते हुए कहता है—आत्मा को ससार मे भटकाने वाला कर्म है। कर्म ही जन्म-मरण का मूल है—कम्मं च जाई मरणस्स मूल। भगवान श्री महावीर का यह कथन अक्षरश सत्य है, तथ्य है। कर्म के कारण ही यह विश्व विविध विचित्र घटनाचक्रो मे प्रतिपल परिवर्तित हो रहा है। ईश्वरवादी दर्शनो ने इस विश्ववैचित्र्य एव सुख-दु ख का कारण जहाँ ईश्वर को माना है, वहाँ जैनदशन ने समस्त सुख-दु ख एवं विश्व वैचित्र्य का कारण मूलत· जीव एव उसके साथ सबद्ध कम को माना है। कम स्वतन्त्र रूप से कोई शक्ति नही है, वह स्वय मे पुद्गल है, जड है। किन्तु राग-द्वेष-वशवर्ती आत्मा के द्वारा कर्म किये जाने पर वे इतने बलवान और शक्तिसम्पन्न बन जाते है कि कर्ता को भी अपने बन्धन मे बाध लेते हैं। मालिक को भी नौकर की तरह नचाते है। यह कर्म की बडी विचित्र शक्ति है। हमारे जीवन और जगत के समस्त परिवर्तनो का

यह मुख्य बीज कर्म क्या है ? इसका स्वरूप क्या है ? इसके विविध परिणाम कैसे होते हैं ? यह बडा ही गम्भीर विषय है। जैनदर्शन मे कर्म का बहुत ही विस्तार के साथ वर्णन किया गया है। कर्म का सूक्ष्मातिसूक्ष्म और अत्यन्त गहन विवेचन जैन आगमो मे और उत्तरवर्ती ग्रन्थो मे प्राप्त होता है। वह प्राकृत एव सस्कृत भाषा मे होने के कारण विद्वद्भोग्य तो है, पर साधारण जिज्ञासु के लिए दुर्बोध है। थोकडो मे कर्मसिद्धान्त के विविध स्वरूप का वर्णन प्राचीन आचार्यो ने गूथा है, कण्ठस्थ करने पर साधारण तत्त्व-जिज्ञासु के लिए वह अच्छा ज्ञानदायक सिद्ध होता है।

कर्मसिद्धान्त के प्राचीन ग्रन्थो मे कर्मग्रन्थ और पचसग्रह इन दोनो ग्रन्थो का महत्त्वपूर्ण स्थान है। इनमे जैनदर्शन-समस्त समस्त कर्मवाद, गुणस्थान, मार्गणा, जीव, अजीव के भेद-प्रभेद आदि समस्त जैनदर्शन का विवेचन प्रस्तुत कर दिया गया है। ग्रन्थ जटिल प्राकृत भाषा मे है और इनकी सस्कृत मे अनेक टीकाएँ भी प्रसिद्ध है। गुजराती मे भी इनका विवेचन काफी प्रसिद्ध है। हिन्दी भाषा मे कर्मग्रन्थ के छह भागो का विवेचन कुछ वर्ष पूर्व ही परम श्रद्धेय गुरुदेवश्री के मार्गदर्शन मे प्रकाशित हो चुका है, सर्वत्र उनका स्वागत हुआ। पूज्य गुरुदेवश्री के मार्गदर्शन मे पचसग्रह (दस भाग) का विवेचन भी हिन्दी भाषा मे तैयार हो गया और प्रकाशन भी प्रारम्भ हो गया, किन्तु उनके समक्ष एक भी नही आ सका, यह कमी मेरे मन को खटकती रही, किन्तु निरुपाय ! अब गुरुदेवश्री की भावना के अनुसार ग्रन्थ पाठको के समक्ष प्रस्तुत है, आशा है इसमे सभी लाभान्वित होगे।

—सुकनमुनि

श्रमणसूर्य प्रवर्तक गुरुदेव श्री मिश्रीमल जी महाराज

विद्याभिलाषी श्री सुकन मुनि
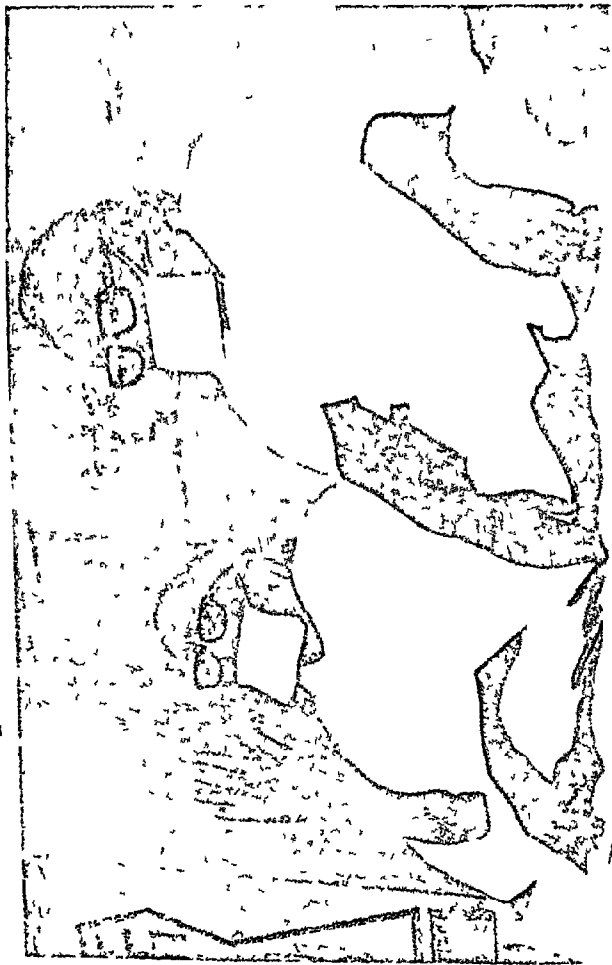
श्रमणसघ के भीष्म-पितामह

श्रमणसूर्य स्व. गुरुदेव श्री मिश्रीमल जी महाराज

स्थानकवासी जैन परम्परा के ५०० वर्षो के इतिहास मे कुछ ही ऐमे गिने-चुने महापुरुष हुए है जिनका विराट व्यक्तित्व अनन्त असीम नभोमण्डल की भाति व्यापक और सीमातीत रहा हो। जिनके उपकारो से न सिर्फ स्थानकवासी जैन, न सिर्फ श्वेताम्बर जैन, न सिर्फ जैन किन्तु जैन-अजैन, बालक-वृद्ध, नारी-पुरुष, श्रमण-श्रमणी सभी उपकृत हुए हैं और सब उस महान् विराट व्यक्तित्व की शीतल छाया से लाभान्वित भी हुए है। ऐसे ही एक आकाशीय व्यक्तित्व का नाम है श्रमणसूर्य प्रवर्तक मरुधरकेसरी श्री मिश्रीमल जी महाराज!

पता नही वे पूर्वजन्म की क्या अखूट पुण्याई लेकर आये थे कि बाल सूर्य की भाति निरन्तर तेज-प्रताप-प्रभाव-यश और सफलता की तेजस्विता, प्रभास्वरता से बढते ही गये, किन्तु उनके जीवन की कुछ विलक्षणता यही है कि सूर्य मध्यान्ह बाद क्षीण होने लगता है, किन्तु यह श्रमणसूर्य जीवन के मध्यान्होत्तर काल मे अधिक अधिक दीप्त होता रहा, ज्यो-ज्यो यौवन की नदी बुढापे के सागर की ओर बढती गई त्यो-त्यो उसका प्रवाह तेज होता रहा, उसकी धारा विशाल और विशालतम होती गई, सीमाएँ व्यापक बनती गई प्रभाव-प्रवाह सौ-सौ धाराएँ बनकर गाव-नगर-वन-उपवन सभी को तृप्त-परितृप्त करता गया। यह सूर्य डूबने की अन्तिम घडी, अतिम क्षण तक तेज से दीप्त रहा, प्रभाव से प्रचण्ड रहा और उसकी किरणो का विस्तार अनन्त असीम गगन के दिक्कोणो के छूता रहा।

जैसे लड्डू का प्रत्येक दाना मीठा होता है, अगूर का प्रत्येक अश मधुर होता है, इसी प्रकार गुरुदेव श्री मिश्रीमल जी महाराज का

जीवन, उनके जीवन का प्रत्येक क्षण, उनकी जीवनधारा का प्रत्येक जलबिन्दु मधुर मधुरतम जीवनदायी रहा। उनके जीवन-सागर की गहराई मे उतरकर गोता लगाने से गुणो की विविध बहुमूल्य मणिया हाथ लगती हैं तो अनुभव होता है, मानव जीवन का ऐसा कौन सा गुण है जो इस महापुरुष मे नही था। उदारता, सहिष्णुता, दयालुता, प्रभावशीलता, समता, क्षमता, गुणज्ञता, विद्वत्ता, कवित्वशक्ति, प्रवचनशक्ति, अदम्य साहस, अद्‌भुत नेतृत्वक्षमता, सघ-समाज की सरक्षणशीलता, युगचेतना को धर्म का नया बोध देने की कुशलता, न जाने कितने उदात्त गुण व्यक्तित्व सागर मे छिपे थे। उनकी गणना करना असभव नही तो दुःसभव अवश्य ही है। महान तार्किक आचार्य सिद्धसेन के शब्दो में—

कल्पान्तवान्तपयस प्रकटोऽपि यस्मान्
मीयेत केन जलधेर्ननु रत्नराशेः

कल्पान्तकाल की पवन से उत्प्रेरित, उचाले खाकर बाहर भूमि पर गिरी सद्रमु की असीम अगणित मणिया सामने दीखती जरूर है, किन्तु कोई उनकी गणना नही कर सकता, इसी प्रकार महापुरुषो के गुण भी दीखते हुए भी गिनती से बाहर होते हैं।

जीवन रेखाएँ

श्रद्धेय गुरुदेव का जन्म वि० स० १६४८ श्रावण शुक्ला चतुर्दशी को पाली शहर मे हुआ।

पाच वर्ष की आयु मे ही माता का वियोग हो गया। १३ वर्ष की । मे भयकर बीमारी का आक्रमण हुआ। उस समय श्रद्धेय गुरु-श्री मानमलजी म एव स्व गुरुदेव श्री बुधमलजी म ने मगलपाठ और चमत्कारिक प्रभाव हुआ, आप शीघ्र ही स्वस्थ हो गये। का ग्रास बनते-बनते बच गये।

गुरुदेव के इस अद्‌भुत प्रभाव को देखकर उनके प्रति हृदय की . श्रद्धा उमड आई। उनका शिष्य बनने की तीव्र उत्कठा जग

पडी। इसी बीच गुरुदेवश्री मानमलजी म का वि स १९७४, माघ वदी ७ को जोधपुर मे स्वर्गवास हो गया। वि स० १९७५ अक्षय तृतया को पूज्य स्वामी श्री बुधमलजी महाराज के कर-कमलो से आपने दीक्षारत्न प्राप्त किया।

आपकी बुद्धि बडी विचक्षण थी। प्रतिभा और स्मरणशक्ति द्भुत थी। छोटी उम्र मे ही आगम, थोकडे, सस्कृत, प्राकृत, गणित, ोतिष, काव्य, छन्द, अलकार, व्याकरण आदि विविध विषयो का ाधिकारिक ज्ञान प्राप्त कर लिया। प्रवचनशैली की ओजस्विता और भावकता देखकर लोग आपश्री के प्रति आकृष्ट होते और यो सहज ापका वर्चस्व, तेजस्व बढता गया।

वे स० १९८५ पौष वदि प्रतिपदा को गुरुदेव श्री बुधमलजी म. वर्गवास हो गया। अब तो पूज्य रघुनाथजी महाराज की सप्रदाय ामस्त दायित्व आपश्री के कधो पर आ गिरा। किन्तु आपश्री तो ा सुयोग्य थे। गुरु से प्राप्त सप्रदाय-परम्परा को सदा विकासो- और प्रभावनापूर्ण ही बनाते रहे। इस दृष्टि से स्थानागसूत्र- त चार शिष्यो (पुत्रो) मे आपको अभिजात (श्रेष्ठतम) शिष्य हा जायेगा, जो प्राप्त ऋद्धि-वैभव को दिन दूना रात चौगुना रहता है।

स. १९९३, लोकाशाह जयन्ती के अवसर पर आपश्री को मरु- ी पद से विभूषित किया गया। वास्तव मे ही आपकी निर्भी- र क्रान्तिकारी सिह गर्जनाएँ इस पद की शोभा के अनुरूप

- -ानकवासी जैन समाज की एकता और सगठन के लिए आपश्री के भगीरथ प्रयास श्रमणसघ के इतिहास मे सदा अमर रहेगे। समय-समय पर टूटती कडिया जोडना, सघ पर आये सकटो को दूरदर्शिता के साथ निवारण करना, संत-सतियो की आन्तरिक व्यवस्था को सुधारना, भीतर मे उठती मतभेद की कटुता को दूर करना—यह आपश्री

जीवन, उनके जीवन का प्रत्येक क्षण, उनकी जीवनधारा का प्रत्येक जलबिन्दु मधुर मधुरतम जीवनदायी रहा। उनके जीवन-सागर की गहराई मे उतरकर गोता लगाने से गुणो की विविध बहुमूल्य मणिया हाथ लगती हैं तो अनुभव होता है, मानव जीवन का ऐसा कौन सा गुण है जो इस महापुरुष मे नही था। उदारता, सहिष्णुता, दयालुता, प्रभावशीलता, समता, क्षमता, गुणज्ञता, विद्वत्ता, कवित्वशक्ति, प्रवचनशक्ति, अदम्य साहस, अद्‌भुत नेतृत्वक्षमता, सघ-समाज की सरक्षणशीलता, युगचेतना को धर्म का नया बोध देने की कुशलता, न जाने कितने उदात्त गुण व्यक्तित्व सागर मे छिपे थे। उनकी गणना करना असभव नही तो दुःसभव अवश्य ही है। महान तार्किक आचार्य सिद्धसेन के शब्दो में—

कल्पान्तवान्तपयस प्रकटोऽपि यस्मान्
मीयेत केन जलधेर्नंनु रत्नराशे.

कल्पान्तकाल की पवन से उत्प्रेरित, उचाले खाकर बाहर भूमि पर गिरी सद्रमु की असीम अगणित मणिया सामने दीखती जरूर हैं, किन्तु कोई उनकी गणना नही कर सकता, इसी प्रकार महापुरुषो के गुण भी दीखते हुए भी गिनती से बाहर होते हैं।

जीवन रेखाएँ

श्रद्धेय गुरुदेव का जन्म वि० स० १९४८ श्रावण शुक्ला चतुर्दशी को पाली शहर मे हुआ।

पाच वर्ष की आयु मे ही माता का वियोग हो गया। १३ वर्ष की अवस्था मे भयकर बीमारी का आक्रमण हुआ। उस समय श्रद्धेय गुरुदेव श्री मानमलजी म एव स्व गुरुदेव श्री बुधमलजी म ने मगलपाठ सुनाया और चमत्कारिक प्रभाव हुआ, आप शीघ्र ही स्वस्थ हो गये। काल का ग्रास बनते-बनते बच गये।

गुरुदेव के इस अद्‌भुत प्रभाव को देखकर उनके प्रति हृदय की असीम श्रद्धा उमड आई। उनका शिष्य बनने की तीव्र उत्कठा जग

पड़ी। इसी बीच गुरुदेवश्री मानमलजी म का वि. सं. १९७४, माघ वदी ७ को जोधपुर मे स्वर्गवास हो गया। वि स० १९७५ अक्षय तृतया को पूज्य स्वामी श्री बुधमलजी महाराज के कर-कमलो से आपने दीक्षारत्न प्राप्त किया।

आपकी बुद्धि बडी विचक्षण थी। प्रतिभा और स्मरणशक्ति अद्भुत थी। छोटी उम्र मे ही आगम, थोकडे, सस्कृत, प्राकृत, गणित, ज्योतिष, काव्य, छन्द, अलकार, व्याकरण आदि विविध विषयो का आधिकारिक ज्ञान प्राप्त कर लिया। प्रवचनशैली की ओजस्विता और प्रभावकता देखकर लोग आपश्री के प्रति आकृष्ट होते और यो सहज ही आपका वर्चस्व, तेजस्व बढता गया।

वि स० १९८५ पौष वदि प्रतिपदा को गुरुदेव श्री बुधमलजी म. का स्वर्गवास हो गया। अब तो पूज्य रघुनाथजी महाराज की सम्प्रदाय का समस्त दायित्व आपश्री के कधो पर आ गिरा। किन्तु आपश्री तो सर्वथा सुयोग्य थे। गुरु से प्राप्त सम्प्रदाय-परम्परा को सदा विकासोन्मुख और प्रभावनापूर्ण ही बनाते रहे। इस दृष्टि से स्थानागसूत्र-वर्णित चार शिष्यो (पुत्रो) मे आपको अभिजात (श्रेष्ठतम) शिष्य ही कहा जायेगा, जो प्राप्त ऋद्धि-वैभव को दिन दूना रात चौगुना बढाता रहता है।

वि स १९९३, लोकाशाह जयन्ती के अवसर पर आपश्री को मरुधरकेसरी पद से विभूषित किया गया। वास्तव मे ही आपकी निर्भीकता और क्रान्तिकारी सिंह गर्जनाएँ इस पद की शोभा के अनुरूप ही थी।

स्थानकवासी जैन समाज की एकता और सगठन के लिए आपश्री के भगीरथ प्रयास श्रमणसघ के इतिहास मे सदा अमर रहेगे। समय-समय पर टूटती कडिया जोडना, सघ पर आये सकटो को दूरदर्शिता के साथ निवारण करना, संत-सतियो की आन्तरिक व्यवस्था को सुधारना, भीतर मे उठती मतभेद की कटुता को दूर करना—यह आपश्री

की ही क्षमता का नमूना है कि बृहत् श्रमणसघ का निर्माण हुआ, बिखरे घटक एक हो गये।

किन्तु यह बात स्पष्ट है कि आपने सगठन और एकता के साथ कभी सौदेबाजी नही की। स्वय सब कुछ होते हुए भी सदा ही पद-मोह से दूर रहे। श्रमणसघ का पदवी-रहित नेतृत्व आपश्री ने किया और जब सभी का पद-ग्रहण के लिए आग्रह हुआ तो आपश्री ने उस नेतृत्व चादर को अपने हाथो मे आचार्यसम्राट (उस समय उपाचार्य) श्री आनन्दऋषिजी महाराज को ओढा दी। यह है आपश्री की त्याग व निस्पृहता की वृत्ति।

कठोर सत्य सदा कटु होता है। आपश्री प्रारम्भ से ही निर्भीक वक्ता, स्पष्ट चिन्तक और स्पष्टवादी रहे हैं। सत्य और नियम के साथ आपने कभी समझौता नही किया, भले ही वर्षो से साथ रहे अपने कहलाने वाले साथी भी साथ छोड कर चले गये, पर आपने सदा ही सगठन और सत्य का पक्ष लिया। एकता के लिए आपश्री के अगणित बलिदान श्रमणसघ के गौरव को युग-युग तक बढाते रहेगे।

सगठन के बाद आपश्री की अभिरुचि काव्य, साहित्य, शिक्षा और सेवा के क्षेत्र मे बढती रही है। आपश्री की बहुमुखी प्रतिभा से प्रसूत सैकडो काव्य, हजारो पद-छन्द आज सरस्वती के शृगार बने हुए है। जैन राम यशोरसायन, जैन पाडव यशोरसायन जैसे महाकाव्यो की रचना, हजारो कवित्त, स्तवन की सर्जना आपकी काव्यप्रतिभा के बेजोड उदाहरण है। आपश्री की आशुकवि-रत्न की पदवी स्वय मे सार्थक है।

कर्मग्रन्थ (छह भाग) जैसे विशाल गुरु गम्भीर ग्रन्थ पर आपश्री के निदेशन मे व्याख्या, विवेचन और प्रकाशन हुआ जो स्वय मे ही एक अनूठा कार्य है। आज जैनदर्शन और कर्मसिद्धान्त के सैकडो अध्येता उनसे लाभ उठा रहे हैं। आपश्री के सान्निध्य मे ही पचसग्रह (दस भाग) जैसे विशालकाय कर्मसिद्धान्त के अतीव गहन ग्रन्थ का सम्पादन विवेचन और प्रकाशन प्रारम्भ हुआ है, जो वर्तमान मे आपश्री की

अनुपस्थिति मे आपश्री के सुयोग्य शिष्य श्री सुकनमुनि जी के निदेशन मे सम्पन्न हो रहा है।

प्रवचन जैन उपन्यास आदि की आपश्री की पुस्तके भी अत्यधिक लोकप्रिय हुई हैं। लगभग ६-७ हजार पृष्ठ से अधिक परिमाण मे आप श्री का साहित्य आंका जाता है।

शिक्षा क्षेत्र मे आपश्री की दूरदर्शिता जैन समाज के लिए वरदान-स्वरूप सिद्ध हुई है। जिस प्रकार महामना मालवीय जी ने भारतीय शिक्षा क्षेत्र मे एक नई क्राति—नया दिशादर्शन देकर कुछ अमर स्थापनाएँ की है, स्थानकवासी जैन समाज के शिक्षा क्षत्र मे आपको भी स्थानकवासी जगत का 'मालवीय' कह सकते है। लोकाशाह गुरुकुल (सादडी), राणावास की शिक्षा सस्थाएँ, जयतारण आदि के छात्रावास तथा अनेक स्थानो पर स्थापित पुस्तकालय, वाचनालय, प्रकाशन सस्थाएँ शिक्षा और साहित्य-सेवा के क्षत्र मे आपश्री की अमर कीर्ति गाथा गा रही है।

लोक-सेवा के क्षेत्र मे भी मरुधरकेसरी जी महाराज भामाशाह और खेमा देदराणी की शुभ परम्पराओ को जीवित रखे हुए थे। फर्क यही है कि वे स्वय धनपति थे, अपने धन को दान देकर उन्होने राष्ट्र एव समाज सेवा की, आप एक अकिचन श्रमण थे, अत आपश्री ने धनपतियो को पेरणा, कर्तव्य-बोध और मार्गदर्शन देकर मरुधरा के गाव-गाव, नगर-नगर मे सेवाभावी सस्थाओ का, सेवात्मक प्रवृत्तियो का व्यापक जाल बिछा दिया।

आपश्री को उदारता की गाथा भी सैकडो व्यक्तियो के मुख से सुनी जा सकतो है। किन्ही भी सत, सतियो को किसी वस्तु की, उप-करण आदि की आवश्यकता होती तो आपश्री निस्सकोच बिना किसी भेदभाव के उनको सहयोग प्रदान करते और अनुकूल साधन-सामग्री की व्यवस्था कराते। साथ ही जहाँ भी पधारते वहाँ कोई रुग्ण, असहाय, अपाहिज, जरूरतमन्द गृहस्थ भी (भले ही वह किसी वर्ण, समाज का हो) आपश्री के चरणो मे पहुच जाता तो आपश्री उसको

दयनीयता से द्रवित हो जाते और तत्काल समाज के समर्थ व्यक्तियो द्वारा उनकी उपयुक्त व्यवस्था करा देते। इसी कारण गाव-गाव मे किसान, कुम्हार, ब्राह्मण, सुनार, माली आदि सभी कौम के व्यक्ति आपश्री को राजा कर्ण का अवतार मानने लग गये और आपश्री के प्रति श्रद्धावनत रहते। यही सच्चे सत की पहचान है, जो किसी भी भेदभाव के बिना मानव मात्र की सेवा मे रुचि रखे, जीव मात्र के प्रति करुणाशील रहे।

इस प्रकार त्याग, सेवा, सगठन, साहित्य आदि विविध क्षेत्रो में सतत प्रवाहशील उस अजर-अमर यशोधारा मे अवगाहन करने से हमे मरुधरकेसरी जी म० के व्यापक व्यक्तित्व की स्पष्ट अनुभूतिया होती हैं कि कितना विराट्, उदार, व्यापक और महान था वह व्यक्तित्व !

श्रमणसघ और मरुधरा के उस महान सत की छत्र-छाया की हमे आज बहुत अधिक आवश्यकता थी किन्तु भाग्य की विडम्बना ही है कि विगत वर्ष १७ जनवरी, १९८४, वि० स० २०४०, पौष शुदि १४, मगलवार को वह दिव्यज्योति अपना प्रकाश विकीर्ण करती हुई इस धराधाम से ऊपर उठकर अनन्त असीम मे लीन हो गयी थी।

पूज्य मरुधरकेसरी जी के स्वर्गवास का उस दिन का दृश्य, शव-यात्रा मे उपस्थित अगणित जनसमुद्र का चित्र आज भी लोगो की स्मृति मे है और शायद शताब्दियो तक इतिहास का कीर्तिमान बनकर रहेगा। जैतारण के इतिहास मे क्या, सभवत राजस्थान के इतिहास मे ही किसी सन्त का महाप्रयाण और उस पर इतना अपार जन-समूह (सभी कौमो और सभी वर्ण के) उपस्थित होना यह पहली घटना थी। कहते हैं, लगभग ७५ हजार की अपार जनमेदिनी से सकुल शव-यात्रा का वह जलूस लगभग ३ किलोमीटर लम्बा था, जिसमे लगभग २० हजार तो आस-पास व गावो के किसान बधु ही थे जो अपने ट्रेक्टरो, बैलगाडियो आदि पर चढकर आये थे। इस प्रकार उस महा-पुरुष का जीवन जितना व्यापक और विराट रहा उससे भी अधिक व्यापक और श्रद्धा परिपूर्ण रहा उसका महाप्रयाण !

· उस दिव्य पुरुष के श्रीचरणो मे शत-शत वन्दन !

—श्रीचन्द सुराना 'सरस'

श्रीमान् पुखराजजी ज्ञानचन्दजी मुणोत, ताम्बरम् (मद्रास)

संसार मे उसी मनुष्य का जन्म सफल माना जाता है जो जीवन में त्याग, सेवा, संयम, दान, परोपकार आदि सुकृत करके जीवन को सार्थक बनाता है। श्रीमान पुखराजजी मुणोत भी इसी प्रकार के उदार हृदय, धर्मप्रेमी, गुरुभक्त और दानवीर हैं जिन्होंने जीवन को त्याग एवं दान दोनो धाराओ मे पवित्र बनाया है।

आपका जन्म वि० स० १९७८ कार्तिक वदी ५, रणसीगाव (पीपाड़ जोधपुर) निवासी फूलचन्दजी मुणोत के घर, धर्मशीला श्रीमती कूकीबाई के उदर से हुआ। आपके दो अन्य बन्धु व तीन बहने भी हैं।

भाई—स्व० मिश्रीमल जी मुणोत
श्री सोहनराज जी मुणोत

बहने—श्रीमती दाकूबाई, धर्मपत्नी सायबचन्द जी गाधी, नागौर
श्रीमती तीजीबाई, धर्मपत्नी रावतमल जी गुन्देचा, हरियाणा
श्रीमती सुगनीबाई, धर्मपत्नी गगाराम जी लूणिया, शेरगढ

आप बारह वर्ष की आयु मे ही मद्रास व्यवसाय हेतु पधार गये और सेठ श्री चन्दनमल जी सखलेचा (तिण्डीवनम्) के पास कामकाज सीखा।

आपका पाणिगहण श्रीमान् मूलचन्द जी लूणिया (शेरगढ निवासी) की सुपुत्री धर्मशीला, सौभाग्यशीला श्रीमती रुकमाबाई के साथ सम्पन्न हुआ। आप दोनो की ही धर्म के प्रति विशेष रुचि, दान, अतिथि-सत्कार व गुरु भक्ति मे विशेष लगन रही है।

ई० सन् १९५० मे आपने ताम्बरम् मे स्वतन्त्र व्यवसाय प्रारम्भ किया। प्रामाणिकता के साथ परिश्रम करना और सबके साथ सद्व्यवहार रखना आपकी विशेषता है। करीब २० वर्षो से आप नियमित

सामायिक तथा चउविहार करते हैं । चतुर्दशी का उपवास तथा मासिक आयम्बिल भो करते है । आपने अनेक अठाइयाँ, पचोले, तेले, आदि तपस्या भी की हैं । ताम्बरम् मे जैन स्थानक एव पाठशाला के निर्माण मे आपने तन-मन-धन से सहयोग प्रदान किया । आप एस० एस० जैन एसोसियेशन ताम्बरम् के कोषाध्यक्ष हैं ।

आपके सुपुत्र श्रीमान् ज्ञानचन्द जी एक उत्साही कर्तव्यनिष्ठ युवक हैं । माता पिता के भक्त तथा गुरुजनो के प्रति असीम आस्था रखते हुए, सामाजिक तथा राष्ट्रीय सेवा कार्यो मे सदा सहयोग प्रदान करते है । श्रीमान् ज्ञानचन्दजी की धर्मपत्नी सौ० खमाबाई (सुपुत्री श्रीमान पुखराज जी कटारिया राणावास) भी आपके सभी कार्यो मे भरपूर सहयोग करती है ।

इस प्रकार यह भाग्यशाली मुणोत परिवार स्व० गुरुदेव श्री मरुधर केशरी जी महाराज के प्रति सदा से असीम आस्थाशील रहा है । विगत मेडता (वि० स० २०३९) चातुर्मास मे श्री सूर्य मुनिजी की दीक्षा प्रसग (आसोज सुदी १०) पर श्रीमान पुखराज जी ने गुरुदेव को उम्र के वर्षो जितनी विपुल घन राशि पच सग्रह प्रकाशन मे प्रदान करने की घोषणा की । इतनी उदारता के साथ सत् साहित्य के प्रचार-प्रसार मे सास्कृतिक रुचि का यह उदाहरण वास्तव मे ही अनुकरणीय व प्रशसनीय है । श्रीमान ज्ञानचन्द जी मुणोत की उदारता, सज्जनता और दानशीलता वस्तुत आज के युवक समाज के समक्ष एक प्रेरणा प्रकाश है ।

हम आपके उदार सहयोग के प्रति हार्दिक आभार व्यक्त करते हुए आपके समस्त परिवार की सुख-समृद्धि की शुभ कामना करते है । आप इसी प्रकार जिनशासन की प्रभावना करते रहे—यही मगल कामना है ।

मन्त्री—
पूज्य श्री रघुनाथ जैन शोध सस्थान
जोधपुर

श्रीमद्‌देवेन्द्रसूरि विरचित कर्मग्रन्थो का सम्पादन करने के सन्दर्भ मे जैन कर्मसाहित्य के विभिन्न ग्रन्थो के अवलोकन करने का प्रसग आया। इन ग्रन्थो मे श्रीमदाचार्य चन्द्रर्षि महत्तरकृत 'पचसग्रह' प्रमुख है।

कर्मग्रन्थो के सम्पादन के समय यह विचार आया कि पचसग्रह को भी सर्वजन सुलभ, पठनीय बनाया जाये। अन्य कार्यो मे लगे रहने मे तत्काल तो कार्य प्रारम्भ नही किया जा सका। परन्तु विचार तो था ही ओर पालो (मारवाड) मे विराजित पूज्य गुरुदेव मरुधरकेसरी, श्रमणसूर्य श्री मिश्रीमल जी म सा. की सेवा मे उपस्थित हुआ एव निवेदन किया—

भन्ते ! कर्मग्रन्थो का प्रकाशन तो हो चुका है, अब इसी क्रम मे पंचसग्रह को भी प्रकाशित कराया जाये।

गुरुदेव ने फरमाया—विचार प्रशस्त है और चाहता भी हूँ कि ऐसे ग्रन्थ प्रकाशित हो, मानसिक उत्साह होते हुए भी शारीरिक स्थिति साथ नही दे पाती है। तब मैंने कहा—आप आदेश दीजिये। कार्य करना ही है तो आपके आशीर्वाद से सम्पन्न होगा ही, आपश्री की प्रेरणा एव मार्गदर्शन से कार्य शीघ्र ही सम्पन्न होगा।

'तथास्तु' के मागलिक के साथ ग्रन्थ की गुरुता और गम्भीरता को सुगम बनाने हेतु अपेक्षित मानसिक श्रम को नियोजित करके कार्य प्रारम्भ कर दिया। 'शनै कथा' की गति से करते-करते आधे से अधिक ग्रन्थ गुरुदेव के बगडी सज्जनपुर चातुर्मास तक तैयार करके सेवा मे उपस्थित हुआ। गुरुदेवश्री ने प्रमोदभाव व्यक्त कर फरमाया चरैवेति-चरैवेति।

इसी बीच शिवशर्मसूरि विरचित 'कम्मपयडी' (कर्मप्रकृति) ग्रन्थ के सम्पादन का अवसर मिला। इसका लाभ यह हुआ कि बहुत से जटिल माने जाने वाले स्थलो का समाधान सुगमता से होता गया।

अर्थबोध की सुगमता के लिए ग्रन्थ के सम्पादन मे पहले मूलगाथा और यथाक्रम शब्दार्थ, गाथार्थ के पश्चात् विशेषार्थ के रूप मे गाथा के हार्द को स्पष्ट किया है। यथास्थान ग्रन्थातरो, मतान्तरो के मन्तव्यो का टिप्पण के रूप मे उल्लेख किया है।

इस समस्त कार्य की सम्पन्नता पूज्य गुरुदेव के वरद आशीर्वादो का सुफल है। एतदर्थ कृतज्ञ हू। साथ ही मरुधरारत्न श्री रजतमुनि जी एव मरुधराभूषण श्री सुकनमुनिजी का हार्दिक आभार मानता हूँ कि कार्य की पूर्णता के लिए प्रतिसमय प्रोत्साहन एव प्रेरणा का पाथेय प्रदान किया।

ग्रन्थ की मूल प्रति प्राप्ति के लिए श्री लालभाई दलपतभाई सस्कृति विद्यामन्दिर अहमदाबाद के निदेशक एव साहित्यानुरागी श्री दलसुखभाई मालवणिया का सस्नेह आभारी हू। साथ ही वे सभी धन्यवादार्ह हैं, जिन्होने किसी न किसी रूप मे अपना-अपना सहयोग दिया है।

ग्रन्थ के विवेचन मे पूरी सावधानी रखी है और ध्यान रखा है कि सैद्धान्तिक भूल, अस्पष्टता आदि न रहे एव अन्यथा प्ररूपणा भी न हो जाये। फिर भी यदि कही चूक रह गई हो तो विद्वान पाठको से निवेदन है कि प्रमादजन्य स्खलना मानकर त्रुटि का संशोधन, परिमार्जन करते हुए सूचित करे। उनका प्रयास मुझे ज्ञानवृद्धि मे सहायक होगा। इसी अनुग्रह के लिए सानुरोध आग्रह है।

भावना तो यही थी कि पूज्य गुरुदेव अपनी कृति का अवलोकन करते, लेकिन सम्भव नही हो सका। अत 'कालाय तस्मै नम' के साथ-साथ विनम्र श्रद्धाजलि के रूप मे—

त्वदीय वस्तु गोविन्द ! तुभ्यमेव समर्प्यते।

के अनुसार उन्ही को सादर सर्मपित है।

खजाची मोहल्ला
बीकानेर, ३३४००१

विनीत
देवकुमार जैन

प्राक्कथन

यह पचसग्रह का उदीरणाकरण अधिकार है। उदय की भाँति उदीरणा भी कर्मफल की व्यक्तता का नाम है। अर्थात् विपाक-वेदन की दृष्टि से तो उदय और उदीरणा मे समानता है, लेकिन उदीरणा की इतनी विशेषता है कि आत्मिक परिणामो के द्वारा कर्म को अपने समय से पूर्व ही उदयाभिमुख कर दिया जाता है अथवा अपकर्षण द्वारा अपने विपाक काल से पूर्व ही उदय मे ले आया जाता है। इसी कारण उदीरणा का विचार पृथक् से किया जाता है।

उदीरणा मे आत्म-परिणामो की मुख्यता है। इसी आशय को स्पष्ट करने के लिये करण शब्द को उदीरणा के साथ सबद्ध किया है। आत्मपरिणामो की विशेष क्रिया के द्वारा उदयमुखेन अनुभव कर लेने के बाद कर्मस्कन्ध कर्मरूपता को छोडकर अन्य पुद्गल रूप मे परिणमन कर जाता है। जब कि उदय मे अपनी स्वाभाविक एक प्रक्रिया के अनुसार कर्मस्कन्ध स्थितिक्षय को प्राप्त होकर अपना-अपना फल देते है। इसके साथ ही उदय और उदीरणा मे एक अन्तर और है कि उदय उदयावलिकागत कर्मस्कन्धो का होता है तथा उदीरणा सत्तागत कर्मस्कन्धो की होती है। उदयावलिकागत कर्म स्कन्धो मे उदीरणाकरण के द्वारा किसी प्रकार का परिवर्तन किया जाना सभव नही है।

उदीरणा सम्बन्धी विवेचन बधविधि प्ररूपणा अधिकार मे भी किया है और जो वर्णन वहाँ नही किया जा सका, उसका यहाँ कथन किया है। इसलिये यदि उदीरणा सम्बन्धी क्रिया का पूर्णरूपेण परिज्ञान करना हो तो बधविधि अधिकार के साथ इस उदीरणाकरण अधिकार को जोडकर अध्ययन करना चाहिये।

प्रस्तुत अधिकार मे उदीरणा सम्बन्धी निम्नलिखित बिन्दुओ पर प्रकाश डाला गया है—

उदय के समान ही प्रकृति, स्थिति, अनुभाग और प्रदेश के प्रकार क्रम से उदीरणा का विचार किया है।

प्रकृत्युदीरणा का वर्णन लक्षण, भेद, साद्यादि निरूपण और स्वामित्व इन चार प्रकार द्वारा किया है।

तदनन्तर लक्षण, भेद, साद्यादि प्ररूपणा, अद्धाच्छेद और स्वामित्व इन पाच अर्थाधिकारो द्वारा स्थित्युदीरणा का निरूपण किया है। स्वामित्व और अद्धाच्छेद का वर्णन प्राय स्थितिसक्रम के समान है। किन्तु जिन प्रकृतियो के बारे मे जो विशेष है, उसका स्पष्टीकरण यथाक्रम से यहा किया हैं।

अनुभागोदीरणा के छह विचारणीय विषय है—१ सज्ञा, २ शुभाशुभ, ३ विपाक, ४ हेतु, ५ साद्यादि और ६ स्वामित्व। इनमे से सज्ञा, शुभाशुभत्व, विपाक और हेतु के अवान्तर प्रकारो द्वारा विस्तृत विचार किया है। बध और उदय के प्रसग मे भी इनका विचार किया है, लेकिन अनुभागोदीरणा के विषय मे जो कुछ विशेष है, उसका पृथक से निर्देश कर दिया है।

प्रदेशोदीरणा के विचार के दो अर्थाधिकार हैं—साद्यादि और स्वामित्व प्ररूपणा।

इस प्रकार से प्रकरण मे उदीरणाकरण सम्बन्धी विषयो का विचार नवासी गाथाओ मे है। जिनमे से एक से चौबीस तक की गाथाओ ने प्रकृत्युदीरणा का, पच्चीस से उनतालीस तक की गाथाओ मे स्थित्युदीरणा का, चालोस से अस्सी तक की गाथाओ मे अनुभागोदीरणा का और इक्यासी से नवासी तक की गाथाओ मे प्रदेशोदीरणा का विचार किया है। इस समग्र वर्णन का सुगम बोध कराने के लिये परिशिष्ट मे सम्वन्धित प्रारूप दिये है।

प्राक्कथन के रूप मे अधिकार के वर्ण्य विषयो की सक्षेप मे रूपरेखा अकित की है। समग्र वर्णन के लिये पाठकगण अधिकार का अध्ययन करे। विज्ञेपु किं वहुना।

सम्पादक

देवकुमार जैन

विषयानुक्रमणिका

□ □

श्रीमदाचार्य चन्द्रर्षिमहत्तर-विरचित

पंचसंग्रह

(मूल, शब्दार्थ तथा विवेचनयुक्त)

उदीरणाकरण-प्ररूपणा अधिकार

८

८. उदीरणाकरण-प्ररूपणा अधिकार

सक्रम, उद्‌वर्तना तथा अपवर्तना करण का विवेचन करने के अनन्तर अब क्रमप्राप्त उदीरणाकरण की व्याख्या प्रारभ करते है।

प्रकृत्युदीरणा

उदीरणाकरण मे विचारणीय विषय इस प्रकार है—लक्षण, भेद, साद्यादि निरूपण एव स्वामित्व। उनमे से पहले लक्षण और भेद का प्रतिपादन करते है।

लक्षण और भेद

जं करणेणोकड्ढिय दिज्जइ उदए उदीरणा एसा।
पगतिट्ठितिमाइ चउहा मूलुत्तरभेयओ दुविहा ॥१॥

शब्दार्थ—ज—जो, **करणेणोकड्ढिय**—करण द्वारा उत्कीर्ण करके—खीचकर, **दिज्जइ**—दिये जाते है, **उदए**—उदय मे, **उदीरणा**—उदीरणा, **एसा**—यह, **पगतिट्ठितिमाइ**—प्रकृति, स्थिति आदि, **चउहा**—चार प्रकार की, **मूलुत्तरभेयओ**—मूल और उत्तर प्रकृतियो के भेद से, **दुविहा**—दो प्रकार की।

गाथार्थ—करण द्वारा उत्कीर्ण करके—खीचकर जो कर्मदलिक उदय मे दिये जाते है, यह उदीरणा है। वह प्रकृति, स्थिति आदि के भेद से चार प्रकार की है तथा मूल और उत्तर प्रकृति के भेद से उनके दो-दो प्रकार है।

विशेषार्थ—गाथा के पूर्वार्ध द्वारा उदीरणा के लक्षण और उत्तरार्ध द्वारा भेदो का निरूपण किया है। उदीरणा का लक्षण इस प्रकार है—

'कषाययुक्त अथवा कषायवियुक्त जिस वीर्यप्रवृत्ति द्वारा उदयावलिका से बहिर्वर्ती—ऊपर के स्थानो मे वर्तमान कर्मपरमाणु उत्कीर्ण करके—खीचकर उदयावलिका मे निक्षिप्त किये जाते हैं, अर्थात् उदयावलिका के स्थानो मे रहे हुए दलिको के साथ भोगने योग्य किये जाते हैं, उसे उदीरणा कहते हैं।[1]

वह उदीरणा प्रकृति, स्थिति आदि के भेद से चार प्रकार की है। यथा—१ प्रकृत्युदीरणा, २ स्थित्युदीरणा, ३ अनुभागोदीरणा और ४ प्रदेशोदीरणा तथा उदीरणा के ये चारो प्रकार भी प्रत्येक मूल प्रकृति और उत्तार प्रकृति के भेद से दो-दो प्रकार के हैं। मूल प्रकृतिया आठ और उत्तार प्रकृतिया एक सौ अट्ठावन है।

इस तरह उदीरणा का लक्षण और भेदो का प्रतिपादन करने के पश्चात् अब साद्यादि प्ररूपणा करते हैं। उसके दो प्रकार हैं—१ मूल प्रकृतिविषयक और २ उत्तार प्रकृतिविषयक। इन दोनो मे से पहले मूल कर्म-प्रकृतिविषयक साद्यादि की प्ररूपणा करते हैं।

मूल प्रकृतियो की साद्यादि प्ररूपणा

वेयणीय मोहणीयाण होइ चउहा उदीरणाउस्स।
साइ अध्रुवा सेसाण साइवज्जा भवे तिविहा ॥२॥

शब्दार्थ—**वेयणीय मोहणीयाण**—वेदनीय और मोहनीय की, **होइ**—है, **चउहा**—चार प्रकार की, **उदीरणाउस्स**—उदीरणा आयु की, **साइ अध्रुवा**—सादि और अध्रुव, **सेसाण**—शेप की, **साइवज्जा**—आदि के सिवाय, **भवे**—है, **तिविहा**—तीन पकार की।

गाथार्थ—वेदनीय और मोहनीय की उदीरणा चार प्रकार की है। आयु की सादि और अध्रुव तथा शेष कर्मो की सादि के सिवाय तीन प्रकार की है।

---

१ उदयावलिबाहिरिल्लठिईहिंतो कसाय सहिएण असहिएण वा जोगसण्णेण करणेण दलियमोकड्ढिय उदयावलियाए पवेसण उदीरणत्ति।

विशेषार्थ—मूल प्रकृतिया आठ है। जिनकी सादि-अनादि प्ररूपणा मे विशेषता है, उसका तो पृथक् और शेष के लिये सामान्य निर्देश कर दिया है। जिसका स्पष्टीकरण इस प्रकार है—

वेदनीय और मोहनीय कर्म की उदीरणा सादि, अनादि, ध्रुव और अध्रुव इस तरह चार प्रकार की है। वह इस प्रकार—वेदनीयकर्म की उदीरणा छठे प्रमत्तसयतगुणस्थान पर्यन्त होती है और उसके बाद तद्योग्य अध्यवसायो का अभाव होने से नही होती है तथा मोहनीयकर्म की उदीरणा क्षपकश्रेणि मे चरम आवलिका न्यून सूक्ष्मसपरायगुणस्थान के कालपर्यन्त होती है और उसके बाद नही होती है। जिससे अप्रमत्तसयत आदि गुणस्थान से गिरने पर वेदनीय की और उपशांतमोहगुणस्थान से गिरने पर मोहनीय की उदीरणा प्रारम्भ होती है, इसलिये वह सादि है, अभी तक जिसने उस-उस गुणस्थान को प्राप्त नही किया, उसके अनादि, अभव्यकी अपेक्षा ध्रुव और भव्य की अपेक्षा अध्रुव है।

आयु की उदीरणा सादि और अध्रुव है। क्योकि उदयावलिका सकल करण के अयोग्य होने से पर्यन्त आवलिका मे आयुकर्म की उदीरणा अवश्य नही होती है। इसलिये अध्रुव-सात है और पुनः परभव मे उत्पत्ति के प्रथम समय मे प्रवर्तमान होने से सादि है।

उक्त तीन प्रकृतियो से शेष रही ज्ञानावरण, दर्शनावरण, नाम, गोत्र और अतराय इन पाच मूल कर्म प्रकृतियो की उदीरणा अनादि, ध्रुव और अध्रुव इस तरह तीन प्रकार की है। वह इस प्रकार—ज्ञानावरण, दर्शनावरण और अतराय की उदीरणा बारहवे क्षीणमोहगुणस्थान की चरम आवलिका शेष न रहे, वहाँ तक सर्व जीवो को और नाम तथा गोत्र की उदीरणा सयोगिकेवलीगुणस्थान के चरम समय पर्यन्त सर्व जीवो को अवश्य होती है, इसलिये इन पाच मूल कर्म प्रकृतियो की उदीरणा अनादि है। उन गुणस्थानो से पतन का अभाव होने से सादि नही है। अभव्य की अपेक्षा ध्रुव और भव्य जो बारहवे

और तेरहवे गुणस्थान को प्राप्त कर उस-उस कर्म की उदीरणा का नाश करेंगे, उनकी अपेक्षा अध्रुव है।

उक्त कथन का साराश यह है कि—

१—ज्ञानावरण, दर्शनावरण, नाम, गोत्र और अतराय इन पाच कर्मों की उदीरणा अनादि, ध्रुव और अध्रुव इस तरह तीन प्रकार की है।

२—वेदनीय और मोहनीय इन दो कर्म प्रकृतियो की उदीरणा के सादि, अनादि, ध्रुव, अध्रुव ये चारो विकल्प हैं।

३—आयुकर्म की उदीरणा सादि और अध्रुव इस तरह दो प्रकार की है।

इस प्रकार से मूल कर्म विषयक साद्यादि प्ररूपणा का आशय जानना चाहिये। अब उत्तर प्रकृतियो सम्बन्धी साद्यादि प्ररूपणा का निरूपण करते है।

उत्तर प्रकृतियो की उदीरणा सम्बन्धी साद्यादि प्ररूपणा

अधुवोदयाण दुविहा मिच्छस्स चउव्विहा तिहण्णासु।
मूलुत्तरपगईण भणामि उद्दीरगा एत्तो ॥३॥

शब्दार्थ—**अधुवोदयाण**—अध्रुवोदया प्रकृतियो की, **दुविहा**—दो प्रकार की, **मिच्छस्स**—मिथ्यात्व की, **चउव्विहा**—चार प्रकार की, **तिहण्णासु**—अन्य मे (ध्रुवोदया प्रकृतियो मे) तीन प्रकार की, **मूलुत्तरपगईग**—मूल और उत्तर प्रकृतियो के, **भणामि**—कहूगा, **उद्दीरगा**—उदीरक, **एत्तो**—अब यहाँ से।

गाथार्थ—अध्रुवोदया प्रकृतियो की उदीरणा दो प्रकार की है। ध्रुवोदया प्रकृतियो मे मिथ्यात्व की चार प्रकार को और अन्य प्रकृतियो की उदीरणा तीन प्रकार की है। अब मूल और उत्तार प्रकृतियो के उदीरको को कहूगा।

विशेषार्थ—उदय होने पर उदीरणा होती है और उदय प्रकृतियो के दो प्रकार है—ध्रुवोदया और अध्रुवोदया। इन दोनो प्रकारो की उदीरणा के सादि आदि विकल्पो का विवरण इस प्रकार है—

मिथ्यात्व, घातिकर्म की चौदह और नामकर्म की तेईस, इस तरह कुल अडतालीस ध्रुवोदया प्रकृतियो को छोडकर शेष एक सौ दस अध्रुवोदया प्रकृतियो की उदीरणा अध्रुवोदया होने से सादि और अध्रुव इस तरह दो प्रकार की है।

ध्रुवोदया प्रकृतियो मे से मिथ्यात्व की उदीरणा सादि, अनादि, ध्रुव और अध्रुव इस तरह चार प्रकार की है। वह इस प्रकार— जिसने सम्यक्त्व प्राप्त किया है, उसके मिथ्यात्व का उदय नही होने से मिथ्यात्व की उदीरणा नही होती है, इसलिये सात है। सम्यक्त्व से गिरकर मिथ्यात्व मे जाने वाले, प्राप्त करने वाले के पुन. उदीरणा होती है अत सादि है, अभी तक जिसने सम्यक्त्व प्राप्त नही किया उसकी अपेक्षा अनादि तथा किसी भी काल में सम्यक्त्व प्राप्त नही करने वाला होने से अभव्य की अपेक्षा ध्रुव—अनन्त और भव्य की अपेक्षा अध्रुव है।

ज्ञानावरणपचक, दर्शनावरणचतुष्क, अतरायपंचक, अस्थिर, स्थिर, शुभ, अशुभ, तैजससप्तक, अगुरुलघु, वर्णादि बीस और निर्माण कुल मिलाकर इन सैंतालीस प्रकृतियो की उदीरणा अनादि, ध्रुव और अध्रुव इस तरह तीन प्रकार की है। जो इस प्रकार—ये सैंतालीस प्रकृतिया ध्रुवोदया होने से अनादि काल से सभी जीवो को इनकी उदीरणा प्रवर्तमान है। इसलिये अनादि है और अभव्यो के अनन्त काल पर्यन्त प्रवर्तमान रहने वाली होने से ध्रुव अनन्त है तथा जो भव्य जीव ऊपर के गुणस्थानो मे जाकर उपर्युक्त प्रकृतियो की उदीरणा का विच्छेद करेंगे उनकी अपेक्षा अध्रुव-सात है। इनमे से ज्ञानावरणपचक, दर्शनावरणचतुष्क और अतरायपचक की उदीरणा बारहवे गुणस्थान तक होती है और नामकर्म की तेतीस प्रकृतियो की उदीरणा तेरहवे गुणस्थान के चरम समय पर्यन्त होती है, उसके बाद उनका विच्छेद हो जाता है।

इस प्रकार से उत्तर प्रकृतियो सम्बन्धी साद्यादि प्ररूपणा का आशय जानना चाहिये । अब गाथोक्त निर्देशानुसार-कौन जीव किन मूल और उत्तर कर्म प्रकृतियो का उदीरक होता है, इसका कथन करते है। अर्थात् उदीरणास्वामित्व का निर्देश करते हैं। पहले मूल प्रकृतियो सम्बन्धी उदीरको को बतलाते है।

मूलप्रकृति सम्बन्धी उदीरणास्वामित्व

घाईण छउमत्था उदीरगा रागिणो उ मोहस्स ।
वेयाऊण पमत्ता सजोगिणो नामगोयाण ॥४॥

शब्दार्थ—**घाईण**—घाति प्रकृतियो के, **छउमत्था**—छद्मस्थ, **उदीरगा**—उदीरक, **रागिणो**—रागी, **उ**—और, **मोहस्स**—मोहनीयकर्म के, **वेयाऊण**—वेदनीय और आयु के, **पमत्ता**—प्रमत्तसयत, **सजोगिणो**—सयोगि, **नामगोयाण**—नाम और गोत्र कर्म के ।

गाथार्थ—घातिकर्मो के छद्मस्थ, मोहनीय के रागी, वेदनीय और आयु के प्रमत्तगुणस्थान तक के और नाम, गोत्र के सयोगिकेवलीगुणस्थान तक के जीव उदीरक है।

विशेषार्थ—गाथा मे मूल कर्म प्रकृतियो के उदीरणा-स्वामित्व का निर्देश किया है ।

घाति कर्मप्रकृतियो के अर्थात् ज्ञानावरण, दर्शनावरण और अतराय इन तीन प्रकृतियो के चरमावलिकाहीन क्षीणमोहगुणस्थान तक मे वर्तमान समस्त छद्मस्थ जीव और इन से शेष रही घाति प्रकृति मोहनीय कर्म के चरमावलिकान्यून सूक्ष्मसपरायगुणस्थान तक के रागी जीव उदीरक हैं। वेदनीय एव आयु कर्म के छठे प्रमत्तसयतगुणस्थान तक के समस्त जीव उदीरक है। छठे गुणस्थान तक मे भी आयु की जब अतिम आवलिका शेष रहे तब उसमे उदीरणा नही होती है, उसके अतिरिक्त शेषकाल मे होती है तथा नाम और गोत्र कर्म के सयोगिकेवलीगुणस्थान तक के समस्त जीव उदीरक हैं।

इस प्रकार से मूलकर्म प्रकृति सम्बन्धी उदीरणास्वामित्व जानना चाहिये। अब उत्तर प्रकृतियो के उदीरणास्वामित्व का निर्देश करते है।

उत्तर प्रकृतियों का उदीरणास्वामित्व

उवपरघायं साहारणं च इयर तणुइ पज्जत्ता।
छउमत्था चउदसणनाणावरणंतरायाण ॥५॥

शब्दार्थ—**उवपरघाय**—उपघात, पराघात, **साहारण**—साधारण, **च**—और, **इयर**—इतर (प्रत्येक नाम), **तणुइ पज्जत्ता**—शरीरपर्याप्ति से पर्याप्त, **छउमत्था**—छद्मस्थ जीव, **चउदसण**—दर्शनावरणचतुष्क, **नाणावरण-तरायाण**—ज्ञानावरणपचक और अतरायपचक।

गाथार्थ—उपघात, पराघात, साधारण और इतर—प्रत्येक नाम के उदीरक शरीरपर्याप्ति से पर्याप्त जीव है। दर्शनावरण-चतुष्क, ज्ञानावरणपचक, अतरायपचक इन चौदह प्रकृतियो के समस्त छद्मस्थ जीव उदीरक हैं।

विशेषार्थ—गाथा मे नामकर्म की चार और घातिकर्मों की चौदह प्रकृतियो के उदीरणास्वामियो का निर्देश किया है। जिसका विस्तृत आशय इस प्रकार है—

उपघात, पराघात, साधारण और इतर—प्रत्येक इन चार प्रकृतियो की उदीरणा के स्वामी शरीरपर्याप्ति से पर्याप्त समस्त जीव है। इतना विशेष है कि साधारणनामकर्म के उदीरक साधारणशरीरी जीव जानना चाहिये।[1]

---

१ साधारण, प्रत्येक और उपघात नामकर्म की उदीरणा यहाँ शरीरपर्याप्ति से पर्याप्त के बताई है, परन्तु कर्मप्रकृति मे प्रकृतिस्थानउदीरणा के अधिकार मे और इसी ग्रन्थ के 'सप्ततिकासग्रह' मे नामकर्म के उदयाधिकार →

दर्शनावरणचतुष्क, ज्ञानावरणपचक और अतरायपचक इन चौदह कर्मप्रकृतियो की उदीरणा के स्वामी चरमावलिका मे वर्तमान क्षीण-मोहगुणस्थानस्थ जीवो को छोडकर शेष समस्त छद्मस्थ जीव हैं। तथा—

तसथावराइतिगतिग आउ गईजातिदिट्ठिवेयाणं।
तन्नामाणूपुव्वीण कितु ते अन्तरगईए ॥६॥

शब्दार्थ—तसथावराइतिगतिग—त्रसत्रिक, स्थावरत्रिक, **आउ**—आयु-चतुष्क, **गईजातिदिट्ठिवेयाण**—गति, जाति, दृष्टि और वेद के, **तन्नामाणू-पुव्वीण**—उस-उस नाम वाले तथा आनुपूर्वी के, **किन्तु**—किन्तु, **ते**—वे, **अतरगईए**—विग्रहगति मे वर्तमान।

मे साधारण, प्रत्येक और उपघात की उदीरणा शरीरस्थ को और पराघात की उदीरणा शरीरपर्याप्ति से पर्याप्त को कही है। शरीरस्थ यानि उत्पत्ति-स्थान मे उत्पन्न हुआ और शरीरपर्याप्त यानि जिसने शरीरपर्याप्ति पूर्ण कर ली हो, यह शरीरस्थ और शरीरपर्याप्त इन दोनो मे भेद है। जहाँ-जहाँ उदय या उदीरणा के स्थान बताये है, वहाँ यह भेद स्पष्ट रूप से ज्ञात होता है। इसके सिवाय कर्मप्रकृति उदीरणा-अधिकार गाथा ६ के **'पत्तेगियस्स उ तणुत्था'** पद की चूर्णि इस प्रकार है—

"पत्तेयसरीरणामाए साहारणसरीरणामाए य सव्वे सरीरोदए वट्टमाणा उदीरगा" अर्थात् शरीरनामकर्म के उदय मे वर्तमान प्रत्येक, साधारण की उदीरणा के स्वामी है। पराघात के लिये गाथा १२ मे **'पराघायस्स उ देहेण पज्जत्ता'** पाठ है। **'देहेण पज्जत्ता'** यानि शरीरपर्याप्ति से पर्याप्त। चूर्णि मे भी इसी प्रकार है, यहाँ **'तणुत्था'** और **'देहेण पज्जत्ता'** का स्पष्ट भेद ज्ञात होता है। अत शरीरस्थ अर्थात् उत्पत्तिस्थल मे उत्पन्न हुआ अर्थ ठीक लगता है। फिर शरीरस्थ का शरीरपर्याप्ति से पर्याप्त अर्थ कैसे किया, यह स्पष्ट नही होता है। विज्ञजन स्पष्ट करने की कृपा करें।

गाथार्थ—त्रसत्रिक, स्थावरत्रिक, आयुचतुष्क, गति, जाति, दृष्टि, वेद और आनुपूर्वी इन समस्त प्रकृतियो की उदीरणा के स्वामी उस-उस नाम वाले जीव हैं। किन्तु आनुपूर्वी की उदीरणा के स्वामी विग्रहगति मे वर्तमान जीव ही हैं।

विशेषार्थ—'तसथावराइतिगतिग' अर्थात् त्रसादित्रिक—त्रस, बादर और पर्याप्त तथा स्थावरादित्रिक—स्थावर, सूक्ष्म और अपर्याप्त, आयुचतुष्क, चार गति, पाच जाति, दृष्टि—मिथ्यात्वमोहनीय, मिश्रमोहनीय और सम्यक्त्वमोहनीय, नपुसक आदि तीन वेद, इन सभी प्रकृतियो की उदीरणा के स्वामी उस-उस नाम वाले यानि उस-उस प्रकृति के उदय वाले जीव उदीरक हैं। जैसे कि—

त्रसनाम की उदीरणा के स्वामी त्रसनाम के उदय वाले त्रस जीव है, वादरनामकर्म के उदीरक वादरनाम के उदय वाले जीव हैं, सूक्ष्मनाम की उदीरणा के स्वामी सूक्ष्मनाम के उदय वाले जीव हैं। इस प्रकार उपर्युक्त उस-उस प्रकृति के उदय वाले जीव उस-उस प्रकृति की उदीरणा के स्वामी हैं। चाहे फिर वे जीव विग्रहगति मे स्थित हो या शरीरस्थ हो।

आनुपूर्वीनामकर्म की उदीरणा के स्वामी भी आनुपूर्वी के उदय वाले जीव हैं। जैसे कि नरकानुपूर्वी की उदीरणा का स्वामी नारक है। इसी प्रकार शेष आनुपूर्वियो के लिये भी समझना चाहिये। किन्तु इतना विशेष है कि मात्र विग्रहगति मे वर्तमान जीव ही आनुपूर्वी के उदीरक है। क्योकि विग्रहगति मे ही आनुपूर्वी का उदय होता है। तथा—

आहारी उत्तरतणु नरतिरितव्वेयए पमोत्तूण।
उदीरंती उरलं ते चेव तसा उवग से ॥७॥

शब्दार्थ—आहारी—आहारकशरीरी, उत्तरतणु—उत्तर शरीरी—वैक्रियशरीरी, नरतिरितव्वेयए—उसके वेदक मनुष्य और तिर्यंच, पमोत्तूण—छोडकर,

उद्दीरतो—उदीरणा करते है, **उरल**—औदारिक शरीर की, **ते चेव**—वही, **तसा**—त्रस, **उवग**—अगोपाग की, **से**—उसके।

गाथार्थ—आहारक शरीरी तथा वैक्रिय शरीरी देव, नारक तथा उनके वेदक मनुष्य एव तिर्यंचो को छोडकर शेष समस्त जीव औदारिक शरीर की उदीरणा करते हैं। वे ही सब परन्तु त्रस जीव उसके अगोपागनाम की उदीरणा के स्वामी हैं।

विशेषार्थ—आहारक शरीर की जिन्होने विकुर्वणा की है ऐसे आहारक शरीरी, वैक्रिय शरीरी देव तथा नारक तथा वैक्रिय शरीर की जिन्होने विकुर्वणा की है, ऐसे वैक्रिय शरीरी मनुष्य[1] और तिर्यंचो को छोडकर शेष समस्त एकेन्द्रिय, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय और पचेन्द्रिय जीव औदारिक शरीरनामकर्म, औदारिकबन्धनचतुष्टय एव औदारिकसघात इन छह प्रकृतियो की उदीरणा करते है तथा जो जीव औदारिक शरीरनाम की उदीरणा के स्वामी हैं वे ही सब औदारिक-अगोपागनाम की उदीरणा के भी स्वामी है। परन्तु यहाँ त्रस जीवो—द्वीन्द्रिय से लेकर पचेन्द्रिय पर्यन्त जीवो—को ही उदीरक जानना चाहिये। क्योकि स्थावरो मे अगोपागनामकर्म का उदय नही होता है। तथा—

आहारी सुरनारग सण्णी इयरेऽनिलो उ पज्जत्तो।
लद्धीए बायरो दीरगो उ वेउव्वियतणुस्स ॥८॥
तदुवगस्सवि तेच्चिय पवण मोत्तूण केई नर तिरिया।
आहारसत्तगस्स वि कुणइ पमत्तो विउव्वन्तो ॥९॥

---

[1] वैक्रिय और आहारक शरीर की विकुर्वणा करने वाले मनुष्य-तिर्यंच को जब तक वह वैक्रिय और आहारक शरीर रहता है तब तक वैक्रिय और आहारक शरीर की उदय-उदीरणा होती है, औदारिक शरीर की उदय-उदीरणा नही होती। यद्यपि उस समय औदारिक शरीर है, परन्तु वह निश्चेष्ट है।

शब्दार्थ—आहारी—आहारपर्याप्ति से पर्याप्त, सुरनारग—देव और नारक, सण्णी—संज्ञी, इयरे—इतर—मनुष्य, तिर्यंच, अनिलो—वायुकाय, उ—और, पज्जत्तो—पर्याप्त, लद्धीए—लब्धियुक्त, बायरो—बादर, दीरगो—उदीरक, उ—और, वेउव्वियतणुस्स—वैक्रिय शरीरनाम के।

तदुवंगस्सवि—उसी के अंगोपांगनाम के (वैक्रिय अंगोपांग के), तेच्चिय—वही, पवण—वायुकाय को, मोत्तूण—छोड़कर, केइ—कोई, नर तिरिया—मनुष्य, तिर्यंच, आहारसत्तगस्स—आहारकसप्तक की, वि—भी, कुणइ—करता है, पमत्तो—प्रमत्तसंयत, विउव्वन्तो—विकुर्वणा करता हुआ।

गाथार्थ—आहारपर्याप्ति से पर्याप्त देव और नारक, वैक्रिय-लब्धि युक्त संज्ञी मनुष्य, तिर्यंच और बादर पर्याप्त वायुकाय के जीव वैक्रिय शरीरनाम के उदीरक हैं।
वायुकाय को छोड़कर वैक्रिय-अंगोपांग के भी वही जीव उदीरक हैं। मात्र कोई मनुष्य, तिर्यंच उदीरक है। विकुर्वणा करता हुआ प्रमत्तसंयत आहारकसप्तक का उदीरक है।

विशेषार्थ—आहारपर्याप्ति से पर्याप्त देव और नारक तथा जिनको वैक्रिय शरीर करने की शक्ति—लब्धि उत्पन्न हुई है और उसकी विकुर्वणा कर रहे हैं ऐसे संज्ञी मनुष्य और तिर्यंच एवं वैक्रिय लब्धि-सम्पन्न दुर्भगनाम के उदय वाले बादर पर्याप्त वायुकाय के जीव वैक्रियशरीरनाम की तथा उपलक्षण से वैक्रियबन्धनचतुष्टय, वैक्रिय-संघातननाम की उदीरणा के स्वामी हैं। तथा—

वैक्रिय-अंगोपांगनाम की उदीरणा के स्वामी भी (वायुकाय के जीवों के अंगोपांग नहीं होने से, उनको छोड़कर शेष) उपर्युक्त वही देवादि जीव जो वैक्रिय शरीरनाम के उदीरक हैं, वे सभी हैं। मात्र मनुष्य, तिर्यंचों में कतिपय ही वैक्रिय शरीर एवं वैक्रिय-अंगोपांगनाम के उदीरक हैं। क्योंकि कुछ एक तिर्यंच और मनुष्य ही वैक्रिय लब्धि-युक्त होते हैं। जिनको उसकी लब्धि होती है, वे ही उसकी विकुर्वणा कर सकते हैं तथा आहारकसप्तक की विकुर्वणा करते हुए लब्धियुक्त

उस समय नही होती है, इसलिये उसका निषेध किया है। बादर लोभ की उदीरणा तो नौवे अनिवृत्तिबादरसम्परायगुणस्थान तक होती है, अत बादर लोभ की उदीरणा के स्वामी नौवे गुणस्थान तक के जीव है। केवल किट्टीकृत लोभ की दसवे गुणस्थान मे वर्तमान जीव ही उदीरणा करते हैं। क्योकि उसका उदय दसवे गुणस्थान मे ही होता है। तथा—

पचिंदिय पज्जत्ता नरतिरिय चउरसउसभपुव्वाणं ।
चउरंसमेव देवा उत्तरतणुभोगभूमा य ॥११॥

शब्दार्थ—पचिंदियपज्जत्ता—पचेन्द्रिय पर्याप्त, नरतिरिय—मनुष्य, तिर्यंच चउरसउसभपुव्वाण—समचतुरस्र आदि सस्थानो और वज्रऋषभनाराच आदि सहननो की, चउरसमेव—समचतुरस्रसस्थान के ही, देवा—देव, उत्तरतणुभोगभूमा— उत्तर शरीर वाले और भोगभूमिज, य—और।

गाथार्थ—समचतुरस्र आदि सस्थानो और वज्रऋषभनाराच आदि सहननो की उदीरणा पचेन्द्रिय पर्याप्त मनुष्य और तिर्यंच करते है। देव, उत्तरशरीर वाले और भोगभूमिज समचतुरस्र-सस्थान के ही उदीरक है।

विशेषार्थ—शरीरपर्याप्ति से पर्याप्त पचेन्द्रिय तिर्यंचो और मनुष्यो के समचतुरस्र आदि छह सस्थानो और वज्रऋषभनाराच आदि छह सहनना की उदीरणा होती है। अर्थात् मनुष्य और तिर्यंच सस्थानो एव सहननो की उदीरणा के स्वामी है। लेकिन उदयप्राप्त कर्म की उदीरणा होती है, ऐसा सिद्धान्त होने से जब जिस सहनन और जिस सस्थान का उदय हो तभी उसकी उदीरणा होती है, अन्य की नही, यह समझना चाहिये।[1] तथा—

---

१ यद्यपि यहाँ शरीरपर्याप्ति से पर्याप्त को सहनन और सस्थान का उदीरक कहा है। परन्तु तनुस्थ उत्पत्तिस्थान मे उत्पन्न हुए के शरीरनामकर्म के

—→

चौदह पूर्वधर प्रमत्तसयतगुणस्थानवर्ती जीव उसकी उदीरणा करते है। अर्थात् उसकी उदीरणा के स्वामी हैं।[1] तथा—

> तेत्तीस नामधुवोदयाण उद्दीरगा सजोगीओ।
>
> लोभस्स उ तणुकिट्टीण होंति तणुरागिणो जीवा ॥१०॥

शब्दार्थ—तेत्तीस— तेतीस, **नामधुवोदयाण**— नाम की ध्रुवोदया प्रकृतियो के, **उद्दीरगा**— उदीरक, **सजोगीओ**—सयोगिकेवली तक के, **लोभस्स**—लोभ की, **उ**—और, **तणुकिट्टीण**—सूक्ष्म किट्टियो के, **होंति**—होते है, **तणुरागिणो**— तनुरागि—सूक्ष्मसपरायगुणस्थानवर्ती, **जीवा**—जीव।

गाथार्थ— नामकर्म की ध्रुवोदया तेतीस प्रकृतियो के उदीरक सयोगिकेवलीगुणस्थान तक के तथा लोभ की सूक्ष्म किट्टियो के तनुरागि—सूक्ष्मसपरायगुणस्थानवर्ती जीव उदीरक है।

विशेषार्थ—तैजससप्तक, वर्णादिबीस, स्थिर, अस्थिर, शुभ, अशुभ, निर्माण और अगुरुलघु रूप नामकर्म की तेतीस ध्रुवोदया प्रकृतियो की उदीरणा के स्वामी सयोगिकेवलीगुणस्थान तक मे वर्तमान समस्त जीव है।

चरमावलिका छोडकर सूक्ष्मसम्परायगुणस्थानवर्ती जीव लोभ सम्बन्धी सूक्ष्म किट्टियो की उदीरणा के स्वामी हैं। चरमावलिका यह क्षपकश्रेणि मे उदयावलिका है और वह सकल करण के अयोग्य है तथा उसके ऊपर दलिक नही है एव उपशमश्रेणि मे अन्तरकरण से ऊपर की दूसरी स्थिति मे दलिक होते है, परन्तु उनकी उदीरणा भी

---

१ आहारक शरीर की विकुर्वणा करके उस शरीर योग्य समस्त पर्याप्तियो से पर्याप्त होकर अप्रमत्तगुणस्थान मे जाता है और वहाँ उसको अट्ठाईस, उनतीस प्रकृतिक ये दो नामकर्म के उदयस्थान होते है। जिससे आहारकद्विक की उदीरणा अप्रमत्तसयत भी करता है, लेकिन अल्प होने से उसकी विवक्षा न की हो, ऐसा प्रतीत होता है।

उस समय नही होती है, इसलिये उसका निषेध किया है। बादर लोभ की उदीरणा तो नौवें अनिवृत्तिबादरसम्परायगुणस्थान तक होती है, अत बादर लोभ की उदीरणा के स्वामी नौवे गुणस्थान तक के जीव हैं। केवल किट्टीकृत लोभ की दसवें गुणस्थान मे वर्तमान जीव ही उदीरणा करते हैं। क्योकि उसका उदय दसवे गुणस्थान मे ही होता है। तथा—

पंचिंदिय पज्जत्ता नरतिरिय चउरसउसभपुव्वाण ।
चउरंसमेव देवा उत्तरतणुभोगभूमा य ॥११॥

शब्दार्थ—पंचिंदियपज्जत्ता—पचेन्द्रिय पर्याप्त, नरतिरिय—मनुष्य, तिर्यंच, चउरसउसभपुव्वाण—समचतुरस्र आदि सस्थानो और वज्रऋषभनाराच आदि सहननो की, चउरसमेव—समचतुरस्रसस्थान के ही, देवा—देव, उत्तरतणुभोगभूमा— उत्तर शरीर वाले और भोगभूमिज, य—और।

गाथार्थ—समचतुरस्र आदि सस्थानो और वज्रऋषभनाराच आदि सहननो की उदीरणा पचेन्द्रिय पर्याप्त मनुष्य और तिर्यंच करते है। देव, उत्तरशरीर वाले और भोगभूमिज समचतुरस्र-सस्थान के ही उदीरक हैं।

विशेषार्थ—शरीरपर्याप्ति से पर्याप्त पचेन्द्रिय तिर्यंचो और मनुष्यो के समचतुरस्र आदि छह सस्थानो और वज्रऋषभनाराच आदि छह सहनना की उदीरणा होती है। अर्थात् मनुष्य और तिर्यंच सस्थानो एव सहननो की उदीरणा के स्वामी हैं। लेकिन उदयप्राप्त कर्म की उदीरणा होती है, ऐसा सिद्धान्त होने से जब जिस सहनन और जिस सस्थान का उदय हो तभी उसकी उदीरणा होती है, अन्य की नही, यह समझना चाहिये।[1] तथा—

---

१ यद्यपि यहाँ शरीरपर्याप्ति से पर्याप्त को सहनन और सस्थान का उदीरक कहा है। परन्तु तनुस्थ उत्पत्तिस्थान मे उत्पन्न हुए के शरीरनामकर्म के →

समस्त देव, उत्तरशरीर वाले—आहारकशरीरी एव वैक्रियशरीरी तथा भोगभूमि मे उत्पन्न हुए समस्त युगलिक[1] मात्र समचतुरस्र-सस्थान की ही उदीरणा करते हैं। अन्य सस्थानो के उदय का अभाव होने से वे उन अन्य सस्थानो की उदीरणा भी नही करते है। तथा—

आइमसघयण चिय सेढीमारूढगा उदीरेति।
इयरे हुण्ड छेवट्ठग तु विगला अपज्जत्ता ॥१२॥

शब्दार्थ—**आइमसघयण**—प्रथम सहनन की, **चिय**—ही, **सेढीमारूढगा**—श्रेणि पर आरूढ हुए, **उदीरेंति**—उदीरणा करते हैं, **इयरे**—इतर, **हुण्ड**—हुण्डक की, **छेवट्ठग**—सेवार्त की, **तु**—और, **विगला**—विकलेन्द्रिय, **अपज्जत्ता**—अपर्याप्त।

गाथार्थ—श्रेणि पर आरूढ हुए प्रथम सहनन की ही उदीरणा करते है। इतर हुण्डक की तथा विकलेन्द्रिय एव अपर्याप्त सेवार्तसहनन की उदीरणा करते है।

विशेषार्थ—श्रेणि पर आरूढ अर्थात् उपशमश्रेणि पर तो आदि के तीन सहननो द्वारा आरूढ हुआ जा सकता है तथा उदय का अभाव होने से अन्य किसी भी सहनन वाले जीव क्षपकश्रेणि पर आरूढ नही हो सकते हैं। अतएव क्षपकश्रेणि पर आरूढ हुए जीव ही प्रथम सहनन—वज्रऋषभनाराचसहनन की उदीरणा करते हैं। तथा—

'इयरे'—ऊपर जिन जीवो को जिस सस्थान का उदीरक कहा है, उनसे अन्य ऐसे एकेन्द्रिय, विकलेन्द्रिय, नारक एव लब्धि अपर्याप्त

उदय के साथ उनका उदय होता है और उदय के साथ उदीरणा भी होती है ऐसा नियम होने से सहनन और सस्थान का उदीरक भी तनुस्थ—शरीर मे वर्तमान जीव होना युक्तिसगत प्रतीत होता है।

1 सहननो मे भी प्रथम सहनन की उदीरणा युगलिक करते हैं।

पचेन्द्रिय तिर्यंच, मनुष्य हुण्डकसस्थान की उदीरणा करते हैं। क्योकि उन सबको हुण्डकसस्थान का ही उदय होता है, अन्य कोई सस्थान उदय मे होता ही नही है तथा विकलेन्द्रियो एव लब्धि-अपर्याप्त पचेन्द्रिय तिर्यंच, मनुष्य के एक सेवार्तसहनन की ही उदीरणा होती हैं। शेष सहननो का उनके उदय नही होने से वे उनकी उदीरणा नही करते हैं। तथा—

वेउव्वियआहारगउदए न नरावि होति सघयणी ।
पज्जत्तबायरे च्चिय आयवउद्दीरगो भोमो ॥१३॥

शब्दार्थ—वेउव्वियआहारगउदए—वैक्रिय और आहारक शरीर का उदय होने पर, न—नही, नरावि—मनुष्य भी, होति—होते ह, सघयणी—सहनन वाले, पज्जत्तबायरे—पर्याप्त बादर, च्चिय—ही, आयवउद्दीरगो—आतपनाम के उदीरक, भोमो—पृथ्वीकाय ।

गाथार्थ—वैक्रिय और आहारक शरीर का उदय होने पर मनुष्य भी सहनन वाले नही होते है। पर्याप्त बादर पृथ्वीकाय जीव ही आतपनाम के उदीरक हैं।

विशेषार्थ—उत्तर वैक्रिय और आहारक शरीर नामकर्म के उदय मे वर्तमान मनुष्य तथा 'अपि' शब्द से उत्तर वैक्रियशरीरी तिर्यंच भी किसी संहनन की उदीरणा नही करते है। क्योकि सहनननाम औदारिक शरीर मे ही होता है, अन्य शरीरो मे हड्डिया नही होने से सहनन नही होता है तथा सूर्य के विमान के नीचे रहने वाले खर पर्याप्त बादर पृथ्वीकाय जीव ही आतपनाम की उदीरणा के स्वामी हैं। क्योकि इनके सिवाय अन्य किसी भी जीव के आतपनामकर्म का उदय होता ही नही है। तथा—

पुढवीआउवणस्सइ बायर पज्जत्त उत्तरतणू य ।
विगलपणिंदियतिरिया उज्जोवुद्दीरगा भणिया ॥१४॥

शब्दार्थ—**पुढवीआउवणस्सइ**—पृथ्वीकाय, अप्काय और वनस्पतिकाय, **बायरपज्जत्त**—बादर पर्याप्त, **उत्तरतणू**—उत्तर वैक्रिय और आहारक शरीरी, **य**—और, **विगलपणिंदियतिरिया**—विकलेन्द्रिय और पचेन्द्रिय तिर्यंच, **उज्जोवुद्दीरगा**—उद्योतनाम के उदीरक, **भणिया**—कहे गये हैं।

गाथार्थ—बादर पर्याप्त पृथ्वीकाय, अप्काय और वनस्पतिकाय तथा उत्तर वैक्रिय एव आहारक शरीरी, विकलेन्द्रिय और पचेन्द्रिय तिर्यंच उद्योतनामकर्म के उदीरक कहे गये है।

विशेषार्थ—बादर लब्धिपर्याप्त पृथ्वीकाय, अप्काय और (प्रत्येक या साधारण) वनस्पतिकाय तथा उत्तर वैक्रियशरीरी, आहारकशरीरी तथा पर्याप्त विकलेन्द्रिय एव तिर्यंच पचेन्द्रिय ये सभी जीव उद्योतनाम की उदीरणा के स्वामी है। क्योकि इन सभी जीवो के उद्योत नाम का उदय सभव है। जव और जिनको उद्योतनाम का उदय हो तब और उनको उद्योतनाम की उदीरणा भी होती है। तथा—

सगला सुगतिसराण पज्जत्तासंखवास देवा य।
इयराण नेरइया नरतिरि सुसरस्स विगला य ॥१५॥

शब्दार्थ—**सगला**—समस्त इन्द्रियो वाले—पचेन्द्रिय, **सुगति**—शुभ विहायोगति, **सराण**—सुस्वर के, **पज्जत्तासखवास**—पर्याप्त असख्यात वर्षायुष्क, **देवा**—देव, **य**—और, **इयराण**—इतर के—अशुभ विहायोगति और दु स्वर के, **नेरइया**—नैरयिक, **नरतिरि**—मनुष्य, तिर्यंच, **सुसरस्स**—सुस्वर के, **विगला**—विकलेन्द्रिय, **य**—और दु स्वर के।

गाथार्थ—पर्याप्त पचेन्द्रिय, असंख्यवर्षायुष्क युगलिक और देव शुभ विहायोगति एव सुस्वर के तथा नैरयिक और कितनेक मनुष्य, तिर्यंच अशुभ विहायोगति और दु स्वर के उदीरक है। विकलेन्द्रिय सुस्वर और दु स्वर के उदीरक हैं।

विशेषार्थ- कितने ही पर्याप्त पचेन्द्रिय तिर्यंच और मनुष्य तथा सभी असख्यवर्षायुष्क युगलिक, सभी देव प्रशस्त विहायोगति और

सुस्वर नाम की उदीरणा के स्वामी हैं तथा नारक एव जिनको उनका उदय हो ऐसे पर्याप्त मनुष्य, तिर्यंच अप्रशस्त विहायोगति एव दु.स्वर की उदीरणा के स्वामी है[1] तथा पर्याप्त विकलेन्द्रियो मे से कितनेक सुस्वर की और कितने ही दु स्वर की उदीरणा के स्वामी है। लब्धि-अपर्याप्त विकलेन्द्रियादि के विहायोगति और स्वर का उदय नही होता है। तथा—

ऊसासस्स सरस्स य पज्जत्ता आणुपाणभासासु।
जा ण निरुंभइ ते ताव होति उद्दीरगा जोगी ॥१६॥

शब्दार्थ—ऊसासस्स—श्वासोच्छ्वास के, सरस्स—स्वर के, य—और पज्जत्ता—पर्याप्त, आणुपाणभासासु—आनप्राण और भाषा पर्याप्ति से, जा—जब तक, ण—नही, निरुम्भइ—निरोध करते है, ते—उनके, ताव—तब तक, होति—होते है, उद्दीरगा—उदीरक, जोगी—सयोगिकेवली।

गाथार्थ—आनप्राण और भाषा पर्याप्ति से पर्याप्त अनुक्रम से श्वासोच्छ्वास और स्वर के उदीरक है तथा जब तक उन दोनो का निरोध नही होता है, तब तक उन दोनो के सयोगिकेवली उदीरक है।

विशेषार्थ—उच्छ्वास और स्वर के साथ आनप्राण एव भाषा शब्द का अनुक्रम से योग करके यह तात्पर्य समझना चाहिये कि श्वासोच्छ्वासपर्याप्ति से पर्याप्त समस्त जीव उच्छ्वासनामकर्म की उदीरणा के स्वामी है तथा भाषापर्याप्ति से पर्याप्त सभी जीव स्वर—

---

१ लब्धि-अपर्याप्त मनुष्य तिर्यंचो के उक्त प्रकृतियो का उदय ही नही होता है। क्योंकि उनको आदि के २१ और २६ प्रकृतिक ये दो ही उदयस्थान होते है। पर्याप्तनाम के उदय वाले मनुष्य तिर्यंचो मे किसी को शुभ विहायोगति और सुस्वर का और किसी को अशुभ विहायोगति व दु स्वर का उदय होता है और जिसको जिसका उदय होता है, वह उसकी उदीरणा करता है।

सुस्वर अथवा दु स्वर इन दोनो मे से जिसका उदय हो, उसके उदीरक हैं। क्योकि परस्पर विरोधी प्रकृति होने से दोनो का एक साथ उदय नही होता है। यद्यपि पूर्व मे सामान्य से स्वरनाम के उदीरक पर्याप्त बताये जा चुके है, लेकिन भाषापर्याप्ति से पर्याप्त ही स्वर के उदीरक होते है, यह विशेष बताने के लिए यहाँ पुन निर्देश किया है। तथा—

जब तक उच्छ्वास और भाषा का रोध नही होता है, तब तक ही सयोगिकेवली भगवान उच्छ्वास एव स्वर नाम की उदीरणा के स्वामी होते है, तत्पश्चात् उदय नही होने से उदीरणा नही होती है। तथा—

नेरइया सुहुमतसा वज्जिय सुहुमा य तह अपज्जत्ता।
जसकित्तुदीरगाइज्जसुभगनामाण सण्णिसुरा ॥१७॥

शब्दार्थ—**नेरइया**—नारक, **सुहुमतसा**—सूक्ष्म त्रस, **वज्जिय**—छोडकर, **सुहुमा**—सूक्ष्म, **य**—और, **तह**—तथा, **अपज्जत्ता**—अपर्याप्त, **जसकित्तुदीरगाइज्ज**—यश कीर्ति के उदीरक, आदेय नाम, **सुभगनामाण**—सुभग नाम के, **सण्णिसुरा**—सज्ञी और देव।

गाथार्थ—नारक, सूक्ष्मत्रस, सूक्ष्म तथा अपर्याप्तको को छोडकर शेष जीव यश कीर्ति के उदीरक होते है। आदेय और सुभग नाम के उदीरक सज्ञी और देव होते है।

विशेषार्थ—नारक, सूक्ष्मत्रस—तेजस्काय और वायुकाय के जीव, सूक्ष्मनामकर्म के उदय वाले सभी जीव तथा लब्धि-अपर्याप्त एकेन्द्रिय, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय और पचेन्द्रिय इन सबको छोडकर शेष समस्त जीव यश कीर्ति के उदीरक है। इनमे भी जिनको यश कीर्ति का उदय सम्भव है और उनको जब यश कीर्ति का उदय हो तभी उसकी उदीरणा करते है।

कितने ही सज्ञी मनुष्य और तिर्यंच तथा कितनेक देव जिनको उनका उदय हो, वे सुभग एव आदेय नाम के उदीरक है। तथा—

उच्चं चिय जइ अमरा केई मणुया व नीयमेवण्णे ।
चउगइया दुभगाई तित्थयरो केवली तित्थ ॥१८॥

शब्दार्थ—उच्च—उच्चगोत्र की, चिय—ही, जइ—यति, अमरा—देव, केई—कोई-कोई, मणुया—मनुष्य, व—अथवा, नीयमेवण्णे—अन्य दूसरे नीच गोत्र की, चउगइया—चारो गति के, दुभगाई—दुर्भगादि की, तित्थयरो केवली—तीर्थंकर केवली, तित्थ—तीर्थंकरनाम की ।

गाथार्थ—यति और देव उच्चगोत्र की ही उदीरणा करते हैं। कोई-कोई मनुष्य भी उच्चगोत्र के उदीरक है और अन्य जीव नीचगोत्र के ही उदीरक हैं। दुर्भग आदि की चारो गति के जीव उदीरणा करते हैं। तीर्थंकर केवली तीर्थंकरनाम के उदीरक है।

विशेषार्थ—सम्यक् सयमानुष्ठान मे प्रयत्नवन्त समस्त मुनिराज और समस्त भवनपति, व्यन्तर, ज्योतिष्क एव वैमानिक देव उच्चगोत्र की ही उदीरणा करते है तथा जिनका उच्चकुल मे जन्म हुआ है ऐसे कोई-कोई मनुष्य भी उच्चगोत्र के उदीरक है। उनको नीचगोत्र का उदय नही होने से वे नीचगोत्र की उदीरणा नही करते है तथा उक्त से व्यतिरिक्त नारक, तिर्यंच और नीच कुलोत्पन्न मनुष्य नीचगोत्र की ही उदीरणा करते है। तथा—

'दुभगाई' अर्थात् दुर्भग, अनादेय और अयश कीर्ति नामकर्म की इन तीन प्रकृतियो की चारो गति के जीव उदीरणा करते है। मात्र जिनको सुभग आदि का उदय हो वे उनकी उदीरणा करते है तथा शेष सभी जीव दुर्भग आदि के उदय मे रहते दुर्भग आदि की उदीरणा करते है। तथा—

जिन्होने तीर्थंकरनाम का बध किया है उनको जब केवलज्ञान उत्पन्न हो तब वे तीर्थंकरनाम की उदीरणा करते हैं। क्योकि उसके सिवाय शेष काल मे तीर्थंकरनाम का उदय नही होता है। तथा—

मोत्तूण खीणरागं इ दियपज्जत्तगा उदीरंति ।
निद्दापयला सायासायाई जे पमत्तत्ति ॥१६॥

शब्दार्थ—**मोत्तूण**—छोडकर, **खीणराग**—क्षीणराग को, **इदियपज्जत्तगा**—इन्द्रियपर्याप्ति से पर्याप्त, **उदीरति**—उदीरणा करते हैं, **निद्दापयला**—निद्रा और प्रचला की, **सायासायाई**—साता असाता वेदनीय की, **जे**—जो, **पमत्तत्ति**—प्रमत्तगुणस्थान तक के ।

गाथार्थ—क्षीणराग को छोडकर इन्द्रियपर्याप्ति से पर्याप्त सभी निद्रा और प्रचला की उदीरणा करते हैं। साता-असाता वेदनीय के प्रमत्तगुणस्थान तक के जीव उदीरक हैं।

विशेषार्थ—'खीणराग' अर्थात् क्षीणमोह नामक बारहवा गुण-स्थान, अत उस गुणस्थान की चरम आवलिका शेष न रहे, तब तक इन्द्रियपर्याप्ति से पर्याप्त सभी जीव जब उनका उदय हो तब निद्रा और प्रचला की उदीरणा करते है। इस सम्बन्ध मे मतान्तर निम्न प्रकार हैं—

१ कर्मस्तव नामक प्राचीन दूसरे कर्मग्रन्थ के कर्ता आदि कितनेक आचार्य क्षपकश्रेणि मे और क्षीणमोहगुणस्थान मे भी निद्राद्विक का उदय मानते हैं। अत जब उदय हो तब अवश्य उसकी उदीरणा होती है, इस सिद्धान्त के अनुसार उनके मतानुसार इन्द्रियपर्याप्ति से पर्याप्त होने के काल से लेकर क्षीणमोहगुणस्थान की चरमावलिका शेष न रहे, तब तक निद्राद्विक की उदीरणा होती है। अर्थात् चरमा-वलिका से पूर्व तक निद्राद्विक की उदीरणा होती है।

२ सत्कर्म नामक ग्रन्थ के कर्ता आदि कितने ही आचार्य 'निद्दादुगस्स उदओ खीणखवगे परिच्चज्ज' क्षपकश्रेणि और क्षीणमोहगुणस्थान मे वर्तमान जीवो को छोडकर निद्राद्विक का उदय मानते है। अत उनके मतानुसार क्षपकश्रेणि मे वर्तमान जीवो को छोडकर शेष उपशातमोह-गुणस्थान तक मे वर्तमान समस्त जीवो के निद्राद्विक का उदय और उदीरणा होती है।

३ कर्मप्रकृति उदीरणाकरण गाथा १८ मे कहा है—जिस समय इन्द्रियपर्याप्ति से पर्याप्त होता है, उसके बाद के समय से लेकर क्षपकश्रेणि और क्षीणमोहगुणस्थान मे वर्तमान जीवो को छोडकर (उपशातमोहगुणस्थान पर्यन्त) शेष सभी जीव निद्रा और प्रचला की उदीरणा के स्वामी है।[1] तथा—

मिथ्यादृष्टि से लेकर छठे प्रमत्तसयतगुणस्थान पर्यन्त वर्तमान समस्त जीव साता-असाता वेदनीय की उदीरणा करते हैं। अन्य अप्रमत्तसयत आदि गुणस्थानवर्ती अति विशुद्ध परिणाम वाले होने से तद्योग्य अध्यवसायो के अभाव मे दोनो वेदनीयकर्म मे से किसी की उदीरणा नही करते है। मात्र उनके साता-असाता मे से एक का उदय ही होता है। तथा—

> अपमत्ताईउत्तरतणू य अस्संखयाउ वज्जेत्ता।
> सेसानिद्दाण सामी सबंधगंता कसायाण ॥२०॥

शब्दार्थ—अपमत्ताई—अप्रमत्तादि, उत्तरतणू—उत्तर शरीर वालो, य - और, अस्तखयाउ—असख्यात वर्षायुष्को को, वज्जेत्ता—छोडकर, सेसानिद्दाण शेष निद्राओं के, सामी—स्वामी, सबधगता—अपने बधविच्छेद तक, कसायाण कषायों के।

गाथार्थ—अप्रमत्तादि उत्तर शरीर वालो और असख्यात वर्षायुष्को को छोडकर शेष जीव शेष निद्राओ की उदीरणा के स्वामी है। जिस कषाय का गुणस्थानो मे जहाँ-जहाँ बन्धविच्छेद होता है, वहाँ तक मे वर्तमान जीव उस-उस कषाय की उदीरणा के स्वामी हैं।

---

[1] इंदियपज्जत्तीए दुसमयपज्जत्तगाए पाउग्गा।
निद्दापयलाण खीणरागखवगे परिच्चज्ज ॥
—कर्मप्रकृति, उदीरणाकरण अधिकार, गाथा १८

विशेषार्थ—अप्रमत्तासयत आदि गुणस्थान वालो, 'उत्तरतणू' अर्थात् वैक्रियशरीरी[1] और आहारकशरीरी तथा असख्यात वर्षायुष्क युगलिको को छोडकर शेष सभी जीव शेष निद्राओ—निद्रा-निद्रा, प्रचला-प्रचला, स्त्यानर्द्धि की उदीरणा के स्वामी है। तथा—

जिस कषाय का जिस गुणस्थान मे वन्धविच्छेद होता है, उस गुणस्थान पर्यन्त वर्तमान जीव उस-उस कषाय के उदीरक हैं, अन्य नही। जैसे कि अनन्तानुबन्धिकपाय के सासादनगुणस्थान तक मे वर्तमान, अप्रत्याख्यानावरणकषाय के अविरतसम्यग्दृष्टि तक मे वर्तमान, प्रत्याख्यानावरणकषाय के देशविरत गुणस्थान तक मे वर्तमान तथा लोभ वर्जित सज्वलनकषाय के नौवें अनिवृत्तिबादरसम्परायगुणस्थान मे जहाँ तक बन्ध होता है, वहाँ तक वर्तमान एव सज्वलन लोभ के अनिवृत्तिबादरसम्परायगुणस्थान पर्यन्त वर्तमान जीव उदीरक है और सूक्ष्म लोभकिट्टियो की उदीरणा दसवे गुणस्थान मे वर्तमान आत्माएँ करती हैं। तथा—

हासरईसायाण अतमुहुत्त तु आइम देवा।
इयराण नेरइया उड्ढं परियत्तणविहीए ॥२१॥

शब्दार्थ—**हासरईसायाण**—हास्य, रति और सातावेदनीय के, **अतमुहुत्त**—अन्तर्मुहूर्त, **तु**—और, **आइम**—पहले, **देवा**—देव, **इयराण**—इतरो के, **नेरइया**—नारक, **उड्ढ**—इसके वाद, **परियत्तणविहीए**—परावर्तन के क्रम से।

गाथार्थ—पहले अन्तर्मुहूर्त पर्यन्त देव हास्य, रति और सातावेदनीय के और नारक इतरो—अरति, शोक एव असाता के उदीरक होते है। इसके वाद परावर्तन के क्रम से उदीरक होते है।

विशेषार्थ—उत्पत्ति के प्रथम समय से लेकर अन्तर्मुहूर्त पर्यन्त सभी देव हास्य, रति और सातावेदनीय के ही अवश्य उदीरक होते

---

१ यहाँ वैक्रिय शरीरी पद से देव, नारक तथा वैक्रिय शरीर की जिन्होने विकुवणा की है ऐसे मनुष्य, तिर्यंचो का ग्रहण करना चाहिये।

है। क्योकि प्रारम्भ के अन्तर्मुहूर्त पर्यन्त सभी देवो के हास्य, रति और साता का ही उदय होता है तथा नारक उत्पत्ति के प्रथम समय से लेकर अन्तर्मुहूर्त पर्यन्त अवश्य शोक, अरति एव असातावेदनीय के ही उदीरक होते है। इसका कारण यह है कि नारको के उस समय शोक, अरति तथा असातावेदनीय का ही उदय होता है।

आद्य अन्तर्मुहूर्त बीतने के बाद देव और नारक परावर्तन के क्रम से छहो प्रकृतियो मे से यथायोग्य जिनका उदय होता है उनके उदीरक होते है। ये छह प्रकृतिया परावर्तमान है और परावर्तमान होने से सर्वदा अमुक प्रकृतियो का ही उदय नही हो सकता है। नारको का अधिक काल असाता के उदय मे ही व्यतीत होता है और साता का उदय तीर्थंकर के जन्मकल्याणक आदि प्रसगो पर तथा देवो का अधिक काल साता के उदय मे जाता है और असाता का उदय तो मात्सर्यादि दोषो की उत्पत्ति, प्रियवियोग एव च्यवनादि प्रसगो पर सभव है।

कितने ही नारक जो कि तीव्र पाप के योग से नरको मे उत्पन्न हुए है, उनको अपनी भवस्थिति पर्यन्त असातावेदनीय का ही उदय सभव होने से वे उसी के—आसातावेदनीय के ही उदीरक होते है। तथा—

हासाईछक्कस्स उ जाव अपुव्वो उदीरगा सव्वे।
उदओ उदीरणा इव ओघेण होइ नायव्वो ॥२२॥

शब्दार्थ—हासाईछक्कस्स—हास्यादिषट्क के, उ—ही, जाव—पर्यन्त के, अपुव्वो—अपूर्वकरण, उदीरगा—उदीरक, सव्वे—सभी, उदओ—उदय, उदीरणा इव—उदीरणा के समान, ओघेण—सामान्य से, होइ—है, नायव्वो—जानने योग्य।

गाथार्थ—अपूर्वकरणगुणस्थान पर्यन्त के सभी जीव हास्यादिषट्क के उदीरक होते है। सामान्य से उदीरणा के समान ही उदय जानने योग्य है।

विशेषार्थ—हास्य, रति, अरति, शोक, भय और जुगुप्सा रूप हास्यषट्क के उदीरक अपूर्वकरणगुणस्थान पर्यन्त वर्तमान सभी जीव जानना चाहिये ।

जिस प्रकार से विस्तारपूर्वक प्रकृति-उदीरणा का स्वरूप कहा है उसी प्रकार सामान्यत उदय का स्वरूप भी समझना चाहिये । इसका कारण यह है कि उदय और उदीरणा प्राय साथ ही प्रवर्तित होती है। किन्तु इतना विशेष है कि इकतालीस प्रकृतियो[1] मे ही उदीरणा से उदय अधिककाल पर्यन्त होता है । इसी बात को यहाँ प्राय शब्द से स्पष्ट किया है । क्योकि उनसे शेष रही प्रकृतियो मे तो उदय और उदीरणा युगपद्‌भावी है । तथा—

पगइट्ठाणविगप्पा जे सामी होंति उदयमासज्ज ।
तेच्चिय उदीरणाए नायव्वा घातिकम्माण ॥२३॥

शब्दार्थ—पगइट्ठाणविगप्पा—प्रकृतिस्थान और विकल्प, **जे**—जो, **सामी**—स्वामी, **होंति**—है, **उदयमासज्ज**—उदयाश्रित, **तेच्चिय**—वे ही, **उदीरणाए**—उदीरणा मे, **नायव्वा**—जानना चाहिये, **घातिकम्माण**—घाति कर्मो के ।

गाथार्थ—घातिकर्मो के उदयाश्रित जो प्रकृतिस्थान और उनके विकल्प तथा स्वामी कहे है, वे ही उदीरणा मे भी जानना चाहिये ।

विशेषार्थ—'घातिकम्माण' अर्थात् ज्ञानावरण, दर्शनावरण, मोहनीय और अतराय रूप घातिकर्मो के उदय की अपेक्षा जो-जो प्रकृतिस्थान पूर्व मे कहे गये है और उन-उन प्रकृतिस्थानो के जो-जो भेद बताये है एव उन-उन भेदो के मिथ्यादृष्टि आदि जो स्वामी कहे है वे सभी अन्यूनानतिरिक्त उदीरणा के विषय मे भी समझना चाहिये।

---

१ इकतालीस प्रकृतियो के नाम एव उनका कितने काल उदय अधिक होता है यह पाचवे अधिकार की उदय विधि के प्रसग मे गाथा ९८-१०० द्वारा स्पष्ट किया है ।

क्योंकि इकतालीस प्रकृतियों के सिवाय शेष प्रकृतियों का जहाँ तक उदय होता है—तब तक उदीरणा भी होती है, ऐसा शास्त्रीय सिद्धान्त है।

एक साथ जितनी प्रकृतियों का उदय हो, वह प्रकृतिस्थान कहलाता है। जैसे कि मिथ्यादृष्टि को मोहनीयकर्म की एक साथ सात, आठ, नौ या दस प्रकृतियां उदय में होती हैं। उनमें से आठप्रकृतिक स्थान का उदय अनेक प्रकार से होता है, इसी प्रकार नौप्रकृतिक का भी अनेक रीति से होता है। इसी तरह उदीरणा में भी प्रकृतिस्थान, उनके विकल्प आदि के सम्बन्ध में भी जानना चाहिये। तथा—

> मोत्तुं अजोगिठाणं सेसा नामस्स उदयवण्णेया।
> गोयस्स य सेसाणं उदीरणा जा पमत्तोत्ति ॥२४॥

शब्दार्थ—मोत्तुं—छोड़कर, अजोगिठाणं—अयोगि के प्रकृतिस्थान को, सेसा—शेष नामस्स—नामकर्म के, उदयवण्णेया—उदय के समान जानना चाहिए गोयस्स—गोत्रकर्म के य—और, सेसाणं—शेष की उदीरणा—उदीरणा जा—यावत्, तक पमत्तोत्ति—प्रमत्तसंयतगुणस्थान।

गाथार्थ—अयोगि के प्रकृतिस्थानों को छोड़कर नाम और गोत्र कर्म के शेष प्रकृतिस्थान उदय के समान जानना तथा शेष (वेदनीय और आयु) की उदीरणा प्रमत्तगुणस्थान पर्यन्त होती है।

विशेषार्थ—अयोगिगुणस्थान सम्बन्धी आठ प्रकृति के उदय रूप

अयोगिकेवली भगवान योग का अभाव होने से किसी भी कर्म की उदीरणा नही करते है। इसलिये आठ प्रकृति रूप और नौ प्रकृति रूप प्रकृतिस्थान अयोगिकेवली को उदय मे होते हैं परन्तु उदीरणा मे नही होते हैं। शेष बीस, इक्कीस आदि प्रकृतिक स्थान उदय की तरह उदीरणा मे भी सामान्यत सप्रभेद जानना चाहिये।

गोत्र के सम्बन्ध मे जहाँ-जहाँ उच्चगोत्र या नीचगोत्र का उदय नही होता, उसको छोडकर शेष उदय उदीरणासहित जानना चाहिये। अर्थात् जब-जब और जहाँ-जहाँ उच्चगोत्र या नीचगोत्र का उदय हो वहाँ-वहाँ और तब-तब उदीरणा भी साथ मे होती है। मात्र चौदहवे गुणस्थान मे योग का अभाव होने मे उच्चगोत्र का उदय होने पर भी उदीरणाहीन होता है, यह समझना चाहिये।

साता-असातावेदनीय और मनुष्यायु की प्रमत्तसयतगुणस्थान पर्यन्त उदीरणा जानना चाहिये, आगे अप्रमत्तसयत आदि गुणस्थानो मे नही। क्योकि वे गुणस्थान अति विशुद्ध परिणाम वाले है। वेदनीय और आयु की उदीरणा घोलमान परिणाम मे होती है और वैसे परिणाम छठे प्रमत्तसयतगुणस्थान पर्यन्त ही होते है।

इति शब्द अधिक अर्थ का सूचक होने से शेष तीन आयु की और मनुष्यायु की भी अन्तिम आवलिका मे उदीरणा नही होती है, केवल उदय ही होता है।[1]

इस प्रकार से प्रकृति-उदीरणा की वक्तव्यता जानना चाहिये। अब क्रमप्राप्त स्थिति-उदीरणा का वर्णन प्रारम्भ करते हैं।

स्थिति-उदीरणा

स्थिति-उदीरणा की वक्तव्यता के पाच अर्थाधिकार है—१ लक्षण, २ भेद, ३ साद्यादि प्ररूपणा, ४ अद्धाछेद और ५ स्वामित्व। इनमे से पहले लक्षण और भेद इन दो विषयो का प्रतिपादन करते हैं।

---

१ सुगम बोध के लिये उक्त कथन का दर्शक प्रारूप परिशिष्ट मे देखिये।

क्षण और भेद

पत्तोदयाए इयरा सह वेयइ ठिइउदीरणा एसा ।
बेआवलिया हीणा जावुक्कोसत्ति पाउग्गा ॥२५॥

शब्दार्थ—पत्तोदयाए—उदयप्राप्त, इयरा—इतर—उदय अप्राप्त, सह—साथ, वेयइ—वेदन की जाती है, **ठिइउदीरणा**—स्थिति-उदीरणा, एसा—यह, **बेआवलिया**—दो आवलिका, हीणा—न्यून, **जावुक्कोसत्ति**—उत्कृष्टस्थिति पर्यन्त, **पाउग्गा**—प्रायोग्य ।

गाथार्थ—उदयप्राप्त स्थिति के साथ जो इतर—उदय-अप्राप्त स्थिति वेदन की जाती है, वह स्थिति-उदीरणा है और वह दो आवलिकान्यून उत्कृष्ट स्थिति पर्यन्त उदीरणाप्रायोग्य है ।

विशेषार्थ—गाथा मे स्थिति-उदीरणा का लक्षण एव उसके भेदो का निरूपण किया है। उनमे से स्थिति-उदीरणा का लक्षण इस प्रकार है—

उदयप्राप्त स्थिति के साथ 'इयरा उदय-अप्राप्त, उदयावलिका से ऊपर रही हुई स्थिति को वीर्यविशेष के द्वारा आकर्षित कर, खीचकर जो वेदन किया जाता है, उसे स्थिति-उदीरणा कहते है। यद्यपि स्थिति के समयो को खीचकर उसका प्रक्षेप या अनुभव नही होता है। क्योकि काल खीचा नही जाता है, परन्तु उदयावलिका के बीतने के बाद उस-उस समय मे भोगने के लिये नियत हुए दलिको को वीर्यविशेष से खीचकर उदयावलिका मे जो समय—स्थितिस्थान है उनके साथ भोगने-योग्य किये जाते है। तात्पर्य यह कि उदयावलिका के बाद किसी भी समय भोगने योग्य दलिको को उदीरणाकरण द्वारा उदयावलिका के साथ भोगनेयोग्य किये जाते है।

यद्यपि उदीरणा दलिको की ही होती है, परन्तु उस-उस स्थिति-स्थान मे रहे हुए कर्मदलिको को उदीरित किया जाता है, इसीलिये इस प्रकार की उदीरणा को स्थिति-उदीरणा कहते है।

इस प्रकार से स्थिति-उदीरणा का लक्षण जानना चाहिये। अब भेदो का प्रतिपादन करते हैं—

ज्ञानावरण आदि कर्मों की दो आवलिकान्यून उत्कृष्ट स्थिति जितनी हो, उतनी उत्कृष्ट से उदीरणायोग्य स्थिति है। यानि दो आवलिकान्यून उत्कृष्ट स्थिति पर्यन्त के जितने समय होते है, उतने स्थितिस्थान उदीरणा के योग्य है।

अब इसी बात को स्पष्ट करते है—उदय होने पर जिन प्रकृतियो का उत्कृष्ट स्थितिबध होता है, उनकी उत्कृष्ट से दो आवलिका न्यून समस्त स्थिति उदीरणायोग्य है। जैसे कि ज्ञानावरण आदि जिन प्रकृतियो का उदय हो तब उत्कृष्ट स्थितिबन्ध होता है, उनकी बधा. वलिका जाने के बाद उदयावलिका से ऊपर की समस्त स्थिति की उदीरणा की जाती है। इस प्रकार उदयबधोत्कृष्टा प्रकृतियो की आवलिकाद्विक न्यून उत्कृष्ट स्थिति उत्कृष्ट उदीरणायोग्य होती है तथा जिन नरकगति आदि कर्मप्रकृतियो का उदय—रसोदय न हो तब उत्कृष्ट स्थितिबन्ध होता है, उनका यथासभव उदय हो तब जितनी स्थिति सत्ता मे होती है, उसमे से उदयावलिका रहित शेष स्थितिया उदीरणायोग्य होती है।

दो आवलिकान्यून उत्कृष्ट स्थिति के जितने समय हो उतने स्थिति उदीरणा के प्रभेद जानना चाहिये। वे इस प्रकार—उदयावलिका से ऊपर की समय मात्र स्थिति किसी को उदीरणायोग्य होती है कि जिसे सत्ता मे उतनी ही स्थिति शेष रही हो। इसी तरह किसी को दो समयमात्र, किसी को तीन समयमात्र, इस प्रकार बढते हुए यावत् किसी को दो आवलिका न्यून उत्कृष्ट स्थिति उदीरणायोग्य होती है। जिससे आवलिकाद्विक न्यून उत्कृष्ट स्थिति के जितने समय उतने उदीरणा के स्थान-भेद समझना चाहिये।

इस प्रकार से उदीरणा के भेदो का कथन करने के अनन्तर अब ...मप्राप्त साद्यादि प्ररूपणा का विचार करते हैं। यह प्ररूपणा मूल-

प्रकृतिविषयक और उत्तर प्रकृतिविषयक इस तरह दो प्रकार की है। उसमे से पहले मूल प्रकृति-सम्बन्धी साद्यादि प्ररूपणा करते हैं।

मूल प्रकृति सम्बन्धी साद्यादि प्ररूपणा

वेयणियाऊण दुहा चउव्विहा मोहणीय अजहन्ना ।
पचण्ह साइवज्जा सेसा सव्वेसु दुविगप्पा ॥२६॥

शब्दार्थ—**वेयणियाऊण**—वेदनीय और आयु की, **दुहा**—दो प्रकार, **चउव्विहा**—चार प्रकार, **मोहणीय**—मोहनीय की, **अजहन्ना**—अजघन्य, **पचण्ह**—पाच की, **साइवज्जा**—सादि को छोडकर, **सेसा**—शेष, **सव्वेसु**—सब कर्मों मे, **दुविगप्पा**—दो प्रकार।

गाथार्थ-वेदनीय और आयु की अजघन्य उदीरणा के दो प्रकार, मोहनीय के चार प्रकार और शेष पाच कर्म के सादि के विना तीन प्रकार है। सब कर्मों मे शेष विकल्प के दो प्रकार है।

विशेषार्थ—वेदनीय और आयु की अजघन्य स्थिति-उदीरणा सादि और अध्रुव-सात इस प्रकार दो तरह की है। वह इस प्रकार—वेदनीय की जघन्य स्थिति की उदीरणा अति अल्पस्थिति की सत्ता वाले एकेन्द्रिय को होती है। समयान्तर—कालान्तर मे वढती सत्ता वाले उसी के अजघन्य स्थिति की उदीरणा होती है तथा जघन्य स्थिति की सत्ता वाला हो तव उसी के जघन्य स्थिति की उदीरणा होती है। इस तरह जघन्य से अजघन्य और अजघन्य से जघन्य उदीरणा होते रहने से वे दोनो सादि-अध्रुव (सात) है।

आयु की जघन्य स्थिति की उदीरणा के सिवाय शेष समस्त अजघन्य स्थिति-उदीरणा है और वह समयाधिक पर्यन्तावलिका शेष रहे तव नही होती है। क्योकि समयाधिक पर्यन्तावलिका शेष रहे तब जघन्य स्थिति-उदीरणा होती है तथा परभव मे उत्पत्ति के प्रथम समय मे अजघन्य स्थिति-उदीरणा होती है, अत वह सादि-सात

(अध्रुव) है एव जघन्य, उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट यह तीनो विकल्प सादि-सात हैं। इनमे से जघन्य का विचार तो अजघन्य स्थिति-उदीरणा के प्रसग मे किया जा चुका है और उत्कृष्ट स्थिति-उदीरणा आयु का उत्कृष्ट बध कर उसका जब उदय हो तब समय मात्र होती है। तत्पश्चात् अनुत्कृष्ट स्थिति-उदीरणा होती है और वह समयाधिक आवलिका प्रमाण आयु शेष रहे तब तक होती है। समयाधिक आवलिका शेष रहे तब समय प्रमाण स्थिति की जघन्य उदीरणा होती है। इस तरह नियत काल पर्यन्त प्रवर्तित होने से ये तीनो विकल्प सादि-सात है। तथा—

'चउव्विहा मोहणीय 'अर्थात् मोहनीय की अजघन्य स्थिति-उदीरणा सादि, अनादि, ध्रुव और अध्रुव इस तरह चार प्रकार की है। वह इस प्रकार—मोहनीय की जघन्य स्थिति-उदीरणा सूक्ष्मसपराय-गुणस्थान मे वर्तमान उपशमक अथवा क्षपक के उस गुणस्थान की समयाधिक आवलिका शेष रहे तब होती है। इसके सिवाय सर्वत्र अजघन्य उदीरणा होती है। वह उपशातमोहगुणस्थान मे होती नही, वहाँ से पतन होने पर होती है, अत सादि है, उस स्थान को जिन्होने प्राप्त नही किया उनके अनादि, अभव्य के ध्रुव और भव्य के अध्रुव है। उसके शेष जघन्य, उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट ये तीनो विकल्प सादि-सात है। इनमे से मोहनीय की जघन्य स्थिति-उदीरणा दसवे गुणस्थान मे उस गुणस्थान का समयाधिक आवलिका काल शेष रहे तब समय प्रमाण स्थिति की होती है और वह समय मात्र की होती होने से सादि-सात है, उत्कृष्ट स्थिति-उदीरणा उत्कृष्ट सक्लेश मे वर्तमान मिथ्यादृष्टि के कितनेक काल अर्थात् उत्कृष्ट स्थितिबन्ध अन्तर्मुहूर्त तक होते होने से अन्तर्मुहूर्त पर्यन्त होती है, उसके बाद अनुत्कृष्ट उदीरणा होती है एव क्लिष्ट परिणाम के योग मे उत्कृष्ट स्थिति बधे तब उत्कृष्ट स्थिति-उदीरणा होती है। इस प्रकार मिथ्यादृष्टि के विशुद्धि और सक्लेश परिणाम से उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट स्थितिबन्ध हो तब

उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट स्थिति-उदीरणा होती है। इसलिये वे दोनो सादि सात है।

ज्ञानावरण, दर्शनावरण, अतराय, नाम और गोत्र इन पाच कर्मो की अजघन्य स्थिति-उदीरणा अनादि, ध्रुव और अध्रुव इस तरह तीन प्रकार की है। उसमे ज्ञानावरण, दशनावरण और अतराय की जघन्य स्थिति-उदीरणा क्षीणकषाय के उसकी समयाधिक आवलिका शेष रहे तब होती है और शेष काल मे अजघन्य होती है। वह अजघन्य स्थिति-उदीरणा अनादि काल से हो रही होने से अनादि है, अभव्य के ध्रुव और भव्य के अध्रुव है।

नाम और गोत्र की जघन्य स्थिति-उदीरणा सयोगिकेवली के चरमसमय मे होती है, उसको एक समय मात्र होने से सादि-सात है। उसके सिवाय शेष सभी अजघन्य स्थिति उदीरणा है। वह अनादि काल से हो रही है, अतएव अनादि है। अभव्य के ध्रुव और भव्य के अध्रुव है। शेष जघन्य, उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट विकल्प सादि, अध्रुव हैं। जो इस प्रकार— इन पाचो कर्मो की जघन्य स्थिति-उदीरणा मे सादि अध्रुव भग अजघन्य स्थिति-उदीरणा के प्रसग मे कहे जा चुके है और उत्कृष्ट-अनुत्कृष्ट स्थिति उदीरणा मोहनीयकर्म की तरह मिथ्यादृष्टि को परावर्तन के क्रम से होने के कारण सादि सात है।

इस प्रकार से मूल प्रकृतियो की साद्यादि प्ररूपणा का आशय जानना चाहिए। अब उत्तरप्रकृतियो की साद्यादि प्ररूपणा करते है।

उत्तर प्रकृतियो की साद्यादि प्ररूपणा

मिच्छत्तस्स चउहा धुवोदयाण तिहा उ अजहन्ना।
सेसविगप्पा दुविहा सव्वविगप्पा उ सेसाणं ॥२७॥

शब्दार्थ—**मिच्छत्तस्स**—मिथ्यात्व की, **चउहा**—चार प्रकार की, **धुवोदयाण**—ध्रुवोदया प्रकृतियो की, **तिहा**—तीन प्रकार की, **उ**—और, **अजहन्ना**—अजघन्य, **सेसविगप्पा**—शेष विकल्प, **दुविहा**—दो प्रकार के, **सव्वविगप्पा**—सर्व विकल्प, **उ**—और, **सेसाण**—शेष प्रकृतियो के।

गाथार्थ—मिथ्यात्व की अजघन्य स्थिति उदीरणा चार प्रकार की और ध्रुवोदया प्रकृतियो की तीन प्रकार की है। उनके शेष विकल्प और शेष प्रकृतियो के सर्व विकल्प दो प्रकार के है।

विशेषार्थ—मूल कर्मो की उत्तरप्रकृतियो की साद्यादि प्ररूपणा मिथ्यात्व प्रकृति से प्रारम्भ की है।

मिथ्यात्व की अजघन्य स्थिति-उदीरणा सादि, अनादि ध्रुव और अध्रुव इस तरह चार प्रकार की है। जो इस तरह जानना चाहिये—प्रथमोपशम सम्यक्त्व उत्पन्न करते मिथ्यात्व की प्रथम स्थिति समयाधिक आवलिका शेष रहे तब मिथ्यादृष्टि के जघन्य स्थिति की उदीरणा होती है और वह एक समय पर्यन्त होने से सादि-सान्त है। सम्यक्त्व से गिरकर मिथ्यात्व मे जाते मिथ्यात्व की अजघन्य स्थिति-उदीरणा की शुरुआत होती है, इसलिए सादि है। अभी तक जिन्होने प्रथमोपशम सम्यक्त्व प्राप्त नही किया, उनकी अपेक्षा अनादि, अभव्य की अपेक्षा ध्रुव-अनन्त और भव्य की अपेक्षा अध्रुव-सात स्थिति उदीरणा होती है।

ज्ञानावरणपचक, दर्शनावरणचतुष्क अतरायपचक, तैजससप्तक, वर्णादि बीस, स्थिर, अस्थिर, शुभ, अशुभ, अगुरुलघु और निर्माण इन ध्रुवोदया सैतालीस प्रकृतियो की अजघन्य स्थिति-उदीरणा अनादि, ध्रुव और अध्रुव इस तरह तीन प्रकार की है। जो इस प्रकार से जानना चाहिए—ज्ञानावरणपचक अन्तरायपचक और दर्शनावरणचतुष्क इन चौदह प्रकृतियो की जघन्य स्थिति-उदीरणा क्षीणकषायगुणस्थान की समयाधिक, आवलिका शेष रहे तव होती है और वह एक समय पर्यन्त होने से सादि-सात है। उसके सिवाय शेष सभी अजघन्य स्थिति उदीरणा है। वह अनादिकाल से प्रवर्तित होने मे अनादि, अभव्य के ध्रुव और भव्य के अध्रुव है। तथा—

तैजससप्तक आदि नामकर्म की तेतीस प्रकृतियो की जघन्य स्थिति-उदीरणा सयोगिकेवली को चरमसमय मे होती है। एक समय पर्यन्त

होने से वह सादि-सात है। उसके अतिरिक्त अन्य सब अजघन्य स्थिति-उदीरणा है और वह अनादिकाल से प्रवर्तित है, अत अनादि, अभव्य के ध्रुव-अनन्त और भव्य के अध्रुव-सात है।

उपर्युक्त मिथ्यात्व आदि अडतालीस प्रकृतियो के उत्कृष्ट, अनुत्कृष्ट और जघन्य रूप शेष विकल्प दुविहा— सादि और अध्रुव इस तरह दो प्रकार के है। उन्हे इस तरह जानना चाहिये—उपर्युक्त समस्त प्रकृतियो की उत्कृष्ट स्थिति-उदीरणा उत्कृष्ट सक्लेश मे वर्तमान मिथ्यादृष्टि के कितनेक काल (अन्तर्मुहूर्त) पर्यन्त होती है। तत्पश्चात् समयान्तर-कालान्तर मे (अन्तर्मुहूर्त के बाद) अनुत्कृष्ट, इस प्रकार एक के बाद दूसरी, दूसरी के बाद पहली इस तरह के क्रम मे उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट उदीरणा प्रवर्तित होने से सादि, अध्रुव-सात है और अजघन्य उदीरणा के कथन प्रसग मे यह पहले बताया जा चुका है कि जघन्य स्थिति-उदीरणा सादि, अध्रुव-सात इस तरह दो प्रकार की है।

उक्त प्रकृतियो के अतिरिक्त शेष अध्रुवोदया एक सौ दस प्रकृतियो के उत्कृष्ट, अनुत्कृष्ट, जघन्य और अजघन्य ये सभी विकल्प उनके अध्रुवोदया होने से ही सादि-अध्रुव, इस तरह दो प्रकार के है।

इस प्रकार से स्थिति-उदीरणा की साद्यादि प्ररूपणा का आशय जानना चाहिये। अब स्वामित्व और अद्धाछेद प्ररूपणाओ का प्रतिपादन प्रारम्भ करने से पूर्व सम्बन्धित सामान्य नियम का निरूपण करते है—

सामित्ताद्धाछेया इह ठिइसकमेण तुल्लाओ।
बाहुल्लेण विसेस ज जाणं ताण त वोच्छ ॥२८॥

शब्दार्थ—**सामित्ताद्धाछेया**—स्वामित्व और अद्धाच्छेद, **इह**—यहाँ—स्थिति-उदीरणा मे, **ठिइसकमेण**—स्थितिसक्रम के, **तुल्लाओ**—तुल्य, **बाहुल्लेण**—बहुलता से, **विसेस**—विशेष, **ज**—जो, **जाण**—जिसके विषय मे, **ताण**—उसके सम्बन्ध मे, **त**—उसको, **वोच्छ**—कहूँगा।

गाथार्थ—यहाँ स्वामित्व और अद्धाच्छेद बहुलता से प्राय स्थितिसक्रम के तुल्य है किन्तु जिसके विषय मे जो विशेष है उसके सम्बन्ध मे कहूँगा।

विशेषार्थ—यहाँ—स्थिति-उदीरणा के विषय मे उत्कृष्ट या जघन्य स्थिति की उदीरणा का स्वामी कौन है और कितनी स्थिति की उदीरणा होती है तथा कितनी की नही होती है, यह अधिकाशत स्थिति-सक्रम के तुल्य-समान है। अर्थात् जैसे पूर्व मे सक्रमकरण मे स्थिति-सक्रम के विषय मे जितनी उत्कृष्ट या जघन्य स्थिति का सक्रम होता है और जितनी स्थिति का सक्रम नही होता, उस प्रकार का अद्धाच्छेद कहा है, उसी प्रकार यहाँ—स्थिति-उदीरणा के अधिकार मे भी बहुलता से जानना चाहिये। मात्र जिन प्रकृतियो के सम्बन्ध मे जो विशेष है, उसको यथास्थान कहा जायेगा।

इस स्पष्टीकरण को ध्यान मे रखकर अब स्थिति-उदीरणास्वामित्व की प्ररूपणा करते हैं।

उत्कृष्ट जघन्य स्थिति-उदीरणास्वामित्व

अतोमुहुत्तहीणा सम्मे मिस्समि दोहि मिच्छस्स।
आवलिदुगेण हीणा बधुक्कोसाण परमठिई ॥२९॥

शब्दार्थ—अतोमुहुत्तहीणा—अन्तर्मुहूर्त न्यून, सम्मे मिस्समि—सम्यक्त्व, मिश्र की, दोहि—दो, मिच्छस्स—मिथ्यात्व की, आवलिदुगेण—आवलिकाद्विक से, हीणा—न्यून, बधुक्कोसाण—बधोत्कृष्टा प्रकृतियो की, परमठिई—उत्कृष्ट स्थिति।

गाथार्थ—सम्यक्त्व की उदीरणायोग्य स्थिति मिथ्यात्व की अतर्मुहूर्तहीन उत्कृष्ट स्थिति प्रमाण है और मिश्र की दो अन्तर्मुहूर्त से हीन है तथा बधोत्कृष्टा प्रकृतियो की आवलिकाद्विकहीन उत्कृष्ट स्थिति उदीरणायोग्य है।

विशेषार्थ—मिथ्यात्व की अन्तर्मुहूर्तन्यून सत्तर कोडाकोडी सागरोपम प्रमाण स्थिति सम्यक्त्वमोहनीय मे सक्रमित होती है। सक्रमित

हुई उदयावलिका से ऊपर की उस स्थिति को उसके उदय वाला क्षायोपशमिक सम्यग्दृष्टि उत्कीर्ण करता है, जिससे कुल अन्तर्मुहूर्तन्यून सत्तर कोडाकोडी सागरोपम सम्यक्त्व की स्थिति उदीरणायोग्य होती है तथा मिथ्यात्व की अन्तर्मुहूर्तन्यून सत्तर कोडाकोडी सागरोपम प्रमाण स्थिति मिश्रमोहनीय मे सक्रमित होती है। वहाँ (चतुर्थ गुणस्थान मे) अन्तर्मुहूर्त रहकर तीसरे गुणस्थान मे जाये तो वह मिश्रगुणस्थानवर्ती जीव उदयावलिका से ऊपर की दो अन्तर्मुहूर्तन्यून सत्तर कोडाकोडी सागरोपम प्रमाण स्थिति को उत्कीर्ण करता है। अर्थात् दो अन्तर्मुहूर्तन्यून सत्तर कोडाकोडी सागरोपम प्रमाण स्थिति उदीरणायोग्य होती है।

उक्त कथन का विशेष स्पष्टीकरण इस प्रकार है—कोई मिथ्यादृष्टि तीव्र सक्लेश परिणाम के योग से मिथ्यात्वमोहनीय की उत्कृष्ट सत्तर कोडाकोडी सागरोपम प्रमाण स्थिति बाधे और बाधकर अन्तर्मुहूर्त काल पर्यन्त मिथ्यात्व मे रहकर (क्योकि उत्कृष्ट स्थिति का बन्ध करके अन्तर्मुहूर्त अवश्य मिथ्यात्व मे ही रहता है) सम्यक्त्व प्राप्त करे[1] तो वह सम्यक्त्वी अन्तर्मुहूर्तन्यून सत्तर कोडाकोडी सागरोपम प्रमाण मिथ्यात्व की समस्त स्थिति को सम्यक्त्वमोहनीय और मिश्रमोहनीय मे सक्रमित करता है। अन्तर्मुहूर्तन्यून सम्यक्त्वमोहनीय की वह उत्कृष्ट स्थिति सक्रमावलिका व्यतीत होने के बाद उदीरणायोग्य होती है। सक्रमावलिका व्यतीत होने पर भी वह स्थिति अन्तर्मुहूर्तन्यून ही कहलाती है।[2] इसीलिये सम्यक्त्वमोहनीय की अन्तर्मुहूर्तन्यून सत्तर कोडाकोडी सागरोपम प्रमाण उत्कृष्ट स्थिति उदीरणायोग्य कही है। तथा—

---

१ करण किये बिना जो जीव सम्यक्त्व प्राप्त करता है, उसकी अपेक्षा यह कथन सभव है। किन्तु जो यथाप्रवृत्त आदि करण करके चढता है, उसे तो अन्त कोडाकोडी सागरोपम की ही सत्ता रहती है।

२ मात्र सक्रमावलिका अन्तर्मुहूर्त मे मिल जाने से वह अन्तर्मुहूर्त बडा हो जाता है।

कोई एक जीव सम्यक्त्व गुणस्थान मे अन्तर्मुहूर्त रहकर[1] मिश्र-गुणस्थान प्राप्त करे, वहाँ मिश्रमोहनीय का अनुभव करते उदयावलिका से ऊपर की मिश्रमोहनीय की दो अन्तर्मुहूर्तन्यून सत्तर कोडाकोडी सागरोपम प्रमाण उत्कृष्ट स्थिति उदीरणायोग्य होती है।[2] तथा—

ज्ञानावरणपचक, अतरायपचक, दर्शनावरणचतुष्क, तैजस्सप्तक वर्णादि बीस, निर्माण अस्थिर, अशुभ, अगुरुलघु, मिथ्यात्व, सोलह कपाय, त्रस, बादर, पर्याप्त, प्रत्येक, दुस्वर, दुर्भग, अनादेय, अयश -कीर्ति, वैक्रियसप्तक, पचेन्द्रियजाति, हुण्डकसस्थान, उपघात, पराघात, उच्छ्‌वास, असातावेदनीय, उद्योत, अशुभ विहायोगति और नीचगोत्र रूप छियासी उदयबधोत्कृष्टा प्रकृतियो[3] की आवलिकाद्विकन्यून उत्कृष्ट स्थिति उदीरणायोग्य होती है।

वह इस प्रकार—उपर्युक्त प्रकृतियो का उत्कृष्ट स्थितिबध करके बधावलिका जाने के बाद उदयावलिका से ऊपर की समस्त स्थिति की उदीरणा की जाती है। इसलिये उदयबधोत्कृष्टा प्रकृतियो की आव-लिकाद्विकन्यून अपनी-अपनी उत्कृष्ट स्थिति उदीरणायोग्य कही है।

उपर्युक्त प्रकृतियो की उदीरणायोग्य स्थिति कहकर अब अद्धाच्छेद बतलाते है। जितनी स्थिति की उदीरणा न हो उतनी उदीरणा के

---

१ जैसे उत्कृष्ट स्थिति का बधकर अन्तर्मुहूर्त मिथ्यात्व मे रहने के बाद सम्यक्त्व प्राप्त करता है, इसी प्रकार सम्यक्त्व प्राप्त करने के बाद अन्त-र्मुहूर्त सम्यक्त्व गुणस्थान मे रहने के बाद ही मिश्रगुणस्थान प्राप्त करता है। दर्शनमोहनीयत्रिक की उत्कृष्ट स्थिति की सत्ता पचम आदि गुणस्थानो मे नही होती।

२ यहाँ प्रत्येक स्थान पर उदयावलिका से ऊपर की स्थिति की उदीरणा होती है, परन्तु उदयावलिका को अन्तर्मुहूर्त मे मिला दिये जाने से अन्तर्मुहूर्त-न्यून कहा है। किन्तु अन्तर्मुहूर्त उतना बडा लेना चाहिये।

३ जिन प्रकृतियो का उदय हो और उस समय उत्कृष्ट स्थिति का बध हो तो वे उदयबधोत्कृष्टा प्रकृतिया कहलाती है।

अयोग्य स्थिति अद्धाच्छेद कहलाती है। अत सम्यक्त्वमोहनीय का अन्तर्मुहूर्त, मिश्रमोहनीय का दो अन्तर्मुहूर्त[1] और उदयबंधोत्कृष्टा प्रकृतियों का दो आवलिका अद्धाच्छेद है।[2] उस-उस प्रकृति के उदय वाले उतनी-उतनी स्थिति की उदीरणा के स्वामी है। तथा—

मणुयाणुपुव्विआहारदेवदुगसुहुमवियलतिअगाण ।
आयावस्स य परिवडणमंतमुहुहीणमुक्कोसा ॥३०॥

शब्दार्थ—मणुयाणुपुव्वि मनुष्यानुपूर्वी, आहारदेवदुग – आहारकद्विक, देवद्विक, सुहुमवियलतिअगाण सूक्ष्मत्रिक विकलत्रिक की, आयावस्स—आतप की, य और, परिवडण पतन हो, अतमुहुहीणमुक्कोसा —अन्तर्मुहूर्त-न्यून उत्कृष्ट स्थिति।

गाथार्थ—मनुष्यानुपूर्वी, आहारकद्विक (सप्तक), देवद्विक, सूक्ष्मत्रिक, विकलत्रिक और आतप की उत्कृष्ट स्थिति का बंध करके पतन हो तब उन प्रकृतियो की अन्तर्मुहूर्तन्यून उत्कृष्ट-स्थिति उदीरणायोग्य होती है।

विशेषार्थ—मनुष्यानुपूर्वी, आहारकसप्तक, देवगति, देवानुपूर्वी रूप देवद्विक, सूक्ष्म, अपर्याप्त और साधारण रूप सूक्ष्मत्रिक, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय और चतुरिन्द्रिय जाति रूप विकलत्रिक तथा आतपनाम इन सत्रह प्रकृतियो की जो उत्कृष्ट स्थिति है, उसको बांधकर, उस बंध से पतन हो तब अर्थात् उनका बंध कर लेने के बाद अन्तर्मुहूर्तन्यून उत्कृष्ट स्थिति उदीरणायोग्य होती है।

जिसका विशेष स्पष्टीकरण इस प्रकार है—

कोई एक जीव तथाप्रकार के परिणामविशेष से नरकानुपूर्वी की

---

१ उदयावलिका से ऊपर की स्थिति की उदीरणा होती है, जिससे उदयावलिका भी अद्धाच्छेद मे ही मानी जाती है। अतएव अन्तर्मुहूर्त से ऊपर उदयावलिका को भी अद्धाच्छेद कहना चाहिये था परन्तु यहाँ उदयावलिका को अन्तर्मुहूर्त मे ही समाविष्ट कर दिये जाने से पृथक् निर्देश नही किया है।

२ अद्धाच्छेद को सुगमता से समझने के लिए प्रारूप परिशिष्ट मे देखिये।

बीस कोडाकोडी सागरोपम उत्कृष्ट स्थिति को बाधकर और उसके बाद शुभपरिणामविशेष से मनुष्यानुपूर्वी की पन्द्रह कोडाकोडी सागरोपम प्रमाण उत्कृष्ट स्थिति बाधना प्रारभ करे तो वध्यमान उस मनुष्यानुपूर्वी की स्थिति मे बधावलिकातीत हुई और उदयावलिका से ऊपर की कुल दो आवलिका न्यून बीस कोडाकोडी सागरोपम प्रमाण नरकानुपूर्वी की स्थिति को मनुष्यानुपूर्वी की उदयावलिका से ऊपर सक्रमित करता है। अर्थात् मनुष्यानुपूर्वी की कुल स्थिति एक आवलिका न्यून बीस कोडाकोडी सागरोपम प्रमाण होती है। मनुष्यानुपूर्वी का बध होने पर जघन्य से भी अन्तर्मुहूर्त पर्यन्त बध होता है। जिससे अन्तर्मुहूर्त प्रमाण स्थिति आवलिकान्यून बीस कोडाकोडी सागरोपम मे से कम होती है। उसको बाधने के बाद काल करके अनन्तर समय मे मनुष्य होकर मनुष्यानुपूर्वी का अनुभव करके अन्तर्मुहूर्तन्यून बीस कोडाकोडी सागरोपम प्रमाण उसकी स्थिति उदीरणायोग्य होती है।

प्रश्न—जैसे मनुष्यगति की पन्द्रह कोडाकोडी सागरोपम स्थिति बधती है, उसी प्रकार मनुष्यानुपूर्वी की भी उतनी ही बधती है। दोनो मे से एक की भी बीस कोडाकोडी सागरोपम स्थिति नही बधती है। इसीलिये इन दोनो प्रकृतियो को सक्रमोत्कृष्टा कहा है। जब उन दोनो मे सक्रमोत्कृष्टा समान है, तब जैसे मनुष्यगति की तीन आवलिकान्यून उत्कृष्ट स्थिति उदीरणायोग्य कही है, वैसे ही मनुष्यानुपूर्वी की तीन आवलिकान्यून बीस कोडाकोडी सागरोपमप्रमाण उत्कृष्ट स्थिति कहना चाहिये।

उत्तर—इसका कारण यह है कि मनुष्यानुपूर्वी अनुदयसक्रमोत्कृष्टा और मनुष्यगति उदयसक्रमोत्कृष्टा[1] प्रकृति है। उदयसक्रमोत्कृष्टा प्रकृ-

---

१ उदय रहते सक्रम द्वारा जितनी उत्कृष्ट स्थिति की सत्ता होती है वे उदयसक्रमोत्कृष्टा और उदय न हो तब सक्रम द्वारा जिनकी उत्कृष्ट स्थिति की सत्ता होती है, वे अनुदयसक्रमोत्कृष्टा कहलाती है।

अनुदय सक्रमोत्कृष्टा प्रकृतिया इस प्रकार है—मनुष्यानुपूर्वी, मिश्रमोहनीय, आहारकद्विक, देवद्विक, विकलत्रिक, सूक्ष्मत्रिक और तीर्थंकरनाम।

तियो की संक्रमावलिका बीतने के बाद उदय होने पर उदयावलिका से ऊपर की स्थिति की उदीरणा की जा सकती है। जिससे उसकी तीन आवलिका न्यून उत्कृष्टस्थिति उदीरणायोग्य होती है और अनुदयसंक्रमोत्कृष्टा प्रकृतियों का (उनमे उत्कृष्ट स्थिति का संक्रम होने के बाद) अन्तर्मुहूर्त के पश्चात् उदय होता है, जिससे उनकी अन्तर्मुहूर्तन्यून उत्कृष्ट स्थिति उदीरणायोग्य होती है। तथा—

आहारकसप्तक की अप्रमत्त तद्योग्य उत्कृष्ट संक्लेश द्वारा उत्कृष्टस्थिति बाधता है। उसमे उसी समय स्वमूल प्रकृति से अभिन्न किसी अन्य उत्तर प्रकृति का उत्कृष्ट स्थिति वाला दलिक संक्रमित हो, जिसमे संक्रम द्वारा आहारकद्विक की उत्कृष्ट अन्त:कोडाकोडी सागरोपम प्रमाण उत्कृष्टस्थिति की सत्ता होती है।[1] उस आहारकद्विक को बाधने के बाद अन्तर्मुहूर्त ठहरकर आहारकशरीर करना प्रारम्भ करे, तो उसको आरम्भ करता जीव लब्धि को करने मे उत्सुकता वाला होने से अवश्य प्रमादयुक्त होता है। यानि आहारकशरीर उत्पन्न करने पर आहारकसप्तक की अन्तर्मुहूर्तन्यून उत्कृष्टस्थिति उदीरणायोग्य होती है। तथा—

---

१ आहारकद्विक बाधने के बाद अन्तर्मुहूर्त के अनन्तर ही उसका स्फुरण होता है। स्फुरण यानि उदय और उदय हो तभी उदीरणा होती है। इसीलिए आहारकसप्तक की अन्तर्मुहूर्तन्यून उदीरणा बताई है। आहारकसप्तक का अप्रमत्त बध करता है। वहाँ चाहे जैसे संक्लिष्ट परिणाम हो, परन्तु अन्त:कोडाकोडी से अधिक बध नही होता है एव वहाँ किसी भी प्रकृति की अन्त:कोडाकोडी से अधिक सत्ता नहीं होती है। इतना अवश्य है कि आहारक मे संक्रमित होने वाली अन्य प्रकृतियो की स्थितिसत्ता आहारक की स्थितिसत्ता से अधिक होती है। इसलिए यह कहा है कि संक्रमित होने के बाद आहारक की सत्ता उत्कृष्ट अन्त:कोडाकोडी होती है।

कोई एक जीव तथाविध परिणामविशेप से नरकगति को बीस कोडाकोडी सागरोपम प्रमाण उत्कृष्ट स्थिति बाधकर शुभ परिणाम विशेष से देवगति की दस कोडाकोडी सागरोपम प्रमाण उत्कृष्ट स्थिति बाधना प्रारम्भ करे तो बधती हुई उस देवगति की स्थिति मे उसकी उदयावलिका से ऊपर बधावलिका जिसकी बीत गई है, ऐसी और उदयावलिका से ऊपर की कुल दो आवलिकान्यून नरकगति की समस्त स्थिति सक्रमित करता है जिससे देवगति की एक आवलिका न्यून बीस कोडाकोडी सागरोपम प्रमाण उत्कृष्ट स्थिति की सत्ता होती है। देवगति को बाधते हुए जघन्य से अन्तर्मुहूर्त पर्यन्त बाधता है। वह अन्तर्मुहूर्त आवलिकान्यून बीस कोडाकोडी सागरोपम प्रमाण देवगति की उत्कृष्ट स्थितिसत्ता मे से कम होता है। बाधने के बाद काल करके अनन्तर समय मे देव हो तो देवत्व अनुभव करते हुए उसे देवगति की अतर्मुहूर्त न्यून बीस कोडाकोडी सागरोपम प्रमाण उत्कृष्ट स्थिति उदीरणायोग्य होती है।

प्रश्न—उक्त युक्ति के अनुसार आवलिका अधिक अन्तर्मुहूर्तन्यून स्थिति उदीरणायोग्य होती है तो फिर अन्तर्मुहूर्तन्यून क्यो कहा है ?

उत्तर—यहाँ अन्तर्मुहूर्तन्यून कहने मे कोई दोष नही है। क्योकि अन्तर्मुहूर्त मे आवलिका का प्रक्षेप किया जाये तो भी वह अन्तर्मुहूर्त ही होता है, मात्र उसे बडा समझना चाहिये। इसी प्रकार देवानुपूर्वी के लिये भी तथा शेष विकलत्रिक आदि प्रकृतियो की भी उदीरणा-योग्य उत्कृष्ट स्थिति का स्वयमेव विचार कर लेना चाहिये।

उक्त प्रश्नोत्तर का आशय यह है कि देवगति का उत्कृष्ट स्थिति-बध करने के बाद अन्तर्मुहूर्त के अनन्तर मरण को प्राप्त हो और वह अन्तर्मुहूर्त प्रमाण स्थिति प्रदेशोदय द्वारा भोग ली जाती है, इसलिए अन्तर्मुहूर्तन्यून कही है और आवलिकान्यून बीस कोडाकोडी की तो देवगति की उत्कृष्ट स्थिति की सत्ता ही होती है। किसी भी सक्रमो-त्कृष्टा प्रकृति की अपनी मूलप्रकृति की स्थिति जितनी सत्ता नही होती

है। इसलिये आवलिका अधिक अन्तर्मुहूर्तन्यून बीस कोडाकोडी सागरोपम प्रमाण स्थिति-उदीरणा क्यो नही कही ? इसके उत्तर मे बताया गया है कि दो आवलिकाओ को अन्तर्मुहूर्त मे ही गर्भित कर दिया गया है, जिससे बडा अन्तर्मुहूर्त ग्रहण करने का सकेत किया है।

प्रश्न—अनुदयसक्रमोत्कृष्टा स्थिति वाली उपर्युक्त प्रकृतियो की अन्तर्मुहूर्तन्यून उत्कृष्ट स्थिति उदीरणायोग्य होती है, ऐसा जो ऊपर कहा है, वह युक्तियुक्त है। परन्तु आतपनाम तो बधोत्कृष्टा प्रकृति है। इसलिये ज्ञानावरणादि की तरह उसकी बधावलिका और उदयावलिका इस तरह आवलिकाद्विकन्यून उत्कृष्ट स्थिति उदीरणायोग्य प्राप्त होती है, तो फिर अन्तर्मुहूर्तन्यून क्यो कहा है ?

उत्तर—इसका कारण यह है कि ज्ञानावरणादि उदयबधोत्कृष्टा प्रकृतिया है और आतपनाम अनुदयबधोत्कृष्टा प्रकृति है। अनुदयबधोत्कृष्टा प्रकृतियो की अनुदयसक्रमोत्कृष्टा प्रकृतियो की तरह अन्तर्मुहूर्तन्यून ही उत्कृष्ट स्थिति उदीरणायोग्य होती है।

अब आतपनाम की उत्कृष्ट स्थिति-उदीरणा का विचार करते है—उत्कृष्ट सक्लेश मे वर्तमान ईशान तक के देव ही एकेन्द्रियप्रायोग्य आतप स्थावर और एकेन्द्रियजाति नाम की उत्कृष्ट स्थिति बाधते है, अन्य कोई नही बाधते है। वे देव आतपनाम की उत्कृष्ट स्थिति बाधकर अन्तर्मुहूर्त पर्यन्त देवभव मे ही मध्यम परिणाम से रहकर काल करके खर बादर पृथ्वीकाय मे उत्पन्न होते है। वहाँ उत्पन्न होकर शरीरपर्याप्ति मे पर्याप्ति होने के बाद आतपनाम के उदय मे वर्तमान उसकी उदीरणा करते है, इसीलिये यह कहा है कि आतपनाम की अन्तर्मुहूर्तन्यून उत्कृष्ट स्थिति उदीरणायोग्य होती है।

आतप का ग्रहण उपलक्षण है, अतएव अन्य स्थावर, एकेन्द्रियजाति, नरकद्विक, तिर्यचद्विक, औदारिकसप्तक, सेवार्तसहनन, निद्रापचक रूप उन्नीस अनुदयबधोत्कृष्टा प्रकृतियो की अन्तर्मुहूर्तन्यून

उत्कृष्ट स्थिति उदीरणायोग्य है। इनमे स्थावर और एकेन्द्रियजाति की भावना आतप के समान ही समझना चाहिए। तथा—

नरकद्विक के सम्बन्ध मे विशेष स्पष्टीकरण इस प्रकार है—पर्याप्त सज्ञी पचेन्द्रिय तिर्यच अथवा मनुष्य नरकद्विक की उत्कृष्ट स्थिति बाधता है, उत्कृष्ट स्थिति का बध करने के बाद अन्तर्मुहूर्त के अनन्तर नीचे की पाचवी, छठी और सातवी मे से किसी भी नरकपृथ्वी मे उत्पन्न हो[1] तो उसे जिस समय नरकायु का उदय हो, उसी समय अन्तर्मुहूर्त-न्यून बीस कोडाकोडी सागर प्रमाण नरकगति की उत्कृष्ट स्थिति उदीरणायोग्य होती है। मात्र नरकानुपूर्वी की अन्तर्मुहूर्तन्यून उत्कृष्ट स्थिति की उदीरणा विग्रहगति मे ही होती है। तथा—

कोई एक नारक औदारिक सप्तक, तिर्यचद्विक और अन्तिम सहनन इन प्रकृतियो की उत्कृष्ट स्थिति बाधकर उसके बाद मध्यम परिणाम वाला हो, वही अन्तर्मुहूर्त प्रमाण रहकर तिर्यचगति मे उत्पन्न हो तो तिर्यचगति मे उत्पन्न हुआ वह अन्तर्मुहूर्तन्यून उत्कृष्ट स्थिति की उदीरणा करता है। तथा—

निद्रापचक की भी अनुदय मे उत्कृष्ट सक्लेश से उत्कृष्ट स्थिति बाधकर अन्तर्मुहूर्त बीतने के बाद निद्रा के उदय मे वर्तमान अन्तर्मुहूर्तन्यून उत्कृष्टस्थिति की उदीरणा करता है। निद्रा का जब उदय हो तब उत्कृष्ट सक्लिष्ट परिणाम नही होते है, परन्तु मध्यम परिणाम होते है, जिसमे उसका उदय न हो तभी तीव्र सक्लिष्ट परिणाम से उसकी उत्कृष्ट स्थिति बधती है और उत्कृष्ट स्थिति बाधने के बाद अन्तर्मुहूर्त जाने के अनन्तर ही उदय मे आती है और उदय हो तभी

---

१ इन तीन नरकप्रायोग्य—नरकगति लायक कर्म बाधते नरकद्विक की उत्कृष्ट स्थिति का बध होता है, अन्य नरकप्रायोग्य बाधने पर मध्यम स्थिति बधती है, इसलिए नीचे की तीन नरक पृथ्विया ली है।

उदीरणा होती है, अतएव अन्तर्मुहूर्तन्यून उत्कृष्ट स्थिति उदीरणा-योग्य होती है। तथा—

मनुष्यगति, सातावेदनीय, स्थिरषट्क, हास्यषट्क, तीन वेद, शुभ विहायोगति आदि, संहननपंचक आदि, संस्थानपंचक और उच्चगोत्र रूप उनतीस उदयसंक्रमोत्कृष्टा प्रकृतियों की तीन आवलिका बंधावलिका, संक्रमावलिका और उदयावलिका न्यून उत्कृष्ट स्थिति उदीरणा-योग्य समझना चाहिए। मनुष्यगति आदि में उत्कृष्ट से कितनी स्थिति संक्रमित होती है, संक्रमित होने के बाद उनकी कितनी स्थिति की सत्ता होती है और उसमें से कितनी उदीरित की जाती है, यह सब लक्ष्य में रखकर उत्कृष्ट स्थिति की उदीरणा कहने योग्य है। जैसे कि—

नरकगति की बंधावलिका के जाने के बाद ऊपर की उदयावलिका, इस तरह दो आवलिकान्यून उत्कृष्ट स्थिति संक्रमित होती है और जिसमें संक्रमित होती है, उसकी उदयावलिका से ऊपर ही संक्रमित होती है। इसका कारण यह है कि जिसकी स्थिति संक्रमित होती है उसकी उदयावलिका से ऊपर की स्थिति संक्रमित होती है और जिसमें संक्रमित होती है उसकी उदयावलिका को मिलाने पर एक आवलिकान्यून उत्कृष्ट स्थिति की सत्ता होती है। संक्रमावलिका के जाने के बाद उदयावलिका से ऊपर की स्थिति की उदीरणा होती है, जिससे ऊपर कहे अनुसार तीन आवलिकान्यून उत्कृष्ट स्थिति उदीरणायोग्य होती है।

यहाँ प्रत्येक स्थान पर दो या तीन आवलिका अथवा अन्तर्मुहूर्त जितना काल उदीरणा के अयोग्य कहा है, अतः उतना [illegible] न्यून और जिस-जिस प्रकृति का जिसको उदय हो, उस जीव को उस-उस प्रकृति की उत्कृष्ट स्थिति की उदीरणा का स्वामी समझना चाहिए। तथा—

हयसेसा तित्थठिई पल्लासखेज्जमेत्तिया जाया।
तीसे सजोगि पढमे समए उद्दीरणुक्कोसा ॥३१॥

शब्दार्थ—हयसेसा—कम होते होते शेष, तित्थठिई— तीर्थकरनाम की स्थिति, पल्लासखेज्जमेत्तिया— पल्योपम के असख्यातवें भागमात्र, जाया—रह गई तीसे—उसकी, सजोगि—सयोगिकेवली के पढमे समए—प्रथम समय मे, उद्दीरणुक्कोसा—उत्कृष्ट उदीरणा।

गाथार्थ—कम होते होते तीर्थंकरनाम की स्थिति पल्योपम के असख्यातवे भाग शेष रह गई, उसकी सयोगिकेवली के प्रथम समय मे जो उदीरणा होती है, वह उसकी उत्कृष्ट उदीरणा कहलाती है।

विशेषार्थ—केवलज्ञान प्राप्त करने के पूर्व अपवर्तित-अपवर्तित करके—अपवर्तनाकरण द्वारा कम-कम करके तीर्थकरनाम की पल्योपम के असख्यातवे भागमात्र स्थिति बाकी रखकर कम करते करते शेष रही उतनी स्थिति की सयोगिकेवलीगुणस्थान के प्रथम समय मे जो उदीरणा होती है, वह तीर्थंकरनाम की उत्कृष्ट उदीरणा कहलाती है सर्वदा उत्कृष्ट से भी तीर्थंकरनाम की इतनी ही स्थिति उदीरणायोग्य होती है, अधिक नही।

प्रश्न—तीर्थंकरनाम की स्थिति तीसरे भव मे निकाचित बाधने के बाद उसकी अपवर्तना कैसे होती है? निकाचितबध करने के बाद अपवर्तना क्यो?

उत्तर—प्रश्न उचित है। लेकिन जितनी स्थिति निकाचित होती है, उसकी तो अपवर्तना नही होती, परन्तु अधिक स्थिति की अपवर्तना होती है। जीवस्वभाव से जिस समय मे तीर्थंकरनाम निकाचित होता है, उससे उसकी जितनी आयु बाकी हो उतनी, भवान्तर की और उसके बाद के मनुष्यभव की जितनी आयु होना हो, उतनी स्थिति ही निकाचित होती है, अधिक नही। निकाचित स्थिति तो भोगकर ही पूर्ण की जाती है। उसस ऊपर की जो

इसका कारण यह है कि उसे सत्ता मे अति जघन्य स्थिति है और नवीन बध भी सत्ता के समान या कुछ अधिक करता है, जिससे उपर्युक्त प्रकृतियो की उदीरणा का स्वामी स्थावर है। स्थावर से त्रस को बध और सत्ता अधिक होती है, इसीलिए उसका निषेध किया है।

उक्त इक्कीस प्रकृतियो मे से आतप और उद्योत के सिवाय उन्नीस प्रकृतिया ध्रुवबधिनी होने से और आतप, उद्योत की कोई प्रतिपक्षी प्रकृति न होने से एव इन प्रकृतियो की जितनी अल्प स्थिति की उदीरणा स्थावर करता है, उससे अल्प अन्य कोई नही कर सकने से, उक्त स्वरूप वाला स्थावर इन प्रकृतियो की जघन्य स्थिति का उदीरक कहा है।[1] तथा—

एगिंदियजोगाण पडिवक्खा बधिऊण तव्वेई।
बधालिचरमसमये तदागए सेसजाईण ॥३३॥

शब्दार्थ—**एगिंदियजोगाण**—एकेन्द्रिय के योग्य, **पडिवक्खा**—प्रतिपक्षा प्रकृतियो को, **बधिऊण**—बाधकर, **तव्वेइ**—तद्वेदक, **बधालिचरमसमये**—बधावलिका के चरम समय मे, **तदागए**—उसमे से—एकेन्द्रिय मे से, आया हुआ, **सेसजाईण**—शेप जातियो की।

गाथार्थ—प्रतिपक्षा प्रकृतियो को बाधकर बधावलिका के चरम समय मे तद्वेदक एकेन्द्रिय के योग्य प्रकृतियो की जघन्य स्थिति की उदीरणा करता है। उसमे से—एकेन्द्रिय मे से—आया हुआ शेष जातियो की इसी प्रकार जघन्य स्थिति की उदीरणा करता है।

---

१ निद्राद्विक का ग्यारहवें गुणस्थान तक उदय होता है और वहाँ उसकी स्थिति सत्ता एकेन्द्रिय से भी न्यून सम्भव है, अतएव उसकी जघन्य स्थिति की उदीरणा वहाँ कहना चाहिए, परन्तु कही नही है। विज्ञजन स्पष्ट करने की कृपा करें।

विशेषार्थ—एकेन्द्रियो के ही उदोरणायोग्य प्रकृतिया जैसे कि—एकेन्द्रिय जाति, स्थावर, सूक्ष्म और साधारण नाम। इन प्रकृतियो की जघन्य स्थिति की सत्ता वाला एकेन्द्रिय उन-उन प्रकृतियो की प्रतिपक्षा प्रकृतियो[1] को बाधकर बधावलिका के चरम समय मे उन-उन प्रकृतियो का उदय वाला जीव जघन्य स्थिति की उदीरणा करता है।

तात्पर्य यह है कि सर्व जघन्य—अल्पातिअल्प स्थिति की सत्ता वाला एकेन्द्रिय द्वीन्द्रियादि चारो जातियो को क्रमपूर्वक बाधे और क्रमपूर्वक उन चारो जातिनामकर्म को बाधने के पश्चात् एकेन्द्रियजाति को बाधना प्रारम्भ करे तो उसकी बधावलिका के चरम समय मे वह एकेन्द्रिय अपनी जाति की जघन्य स्थिति की उदीरणा करता है।

उपयु क्त स्वरूप वाले एकेन्द्रिय को अपनी जाति की जघन्य स्थिति का उदीरक कहने का पहला कारण यह है कि वह एकेन्द्रियजाति की कम से कम स्थिति की सत्ता वाला है और दूसरा यह है कि जितने काल अपनी प्रतिपक्षी द्वीन्द्रियादि जातिनामकर्म को बाधता है, उतने काल प्रमाण एकेन्द्रियजाति की स्थिति को भोगने के द्वारा न्यून करता है, जिससे सत्ता मे अल्प स्थिति रहती है और सत्ता मे अति अल्प स्थिति रहने मे उदीरणा भी अति अल्प स्थिति की ही होती है, जिससे उपर्यु क्त स्वरूप वाले एकेन्द्रिय जीव को अपनी जाति की जघन्य स्थिति का उदीरक कहा है। इसी कारण अति जघन्य स्थिति की सत्ता और प्रतिपक्षी प्रकृति का बध, इन दोनो को ग्रहण किया है तथा चारो जातियो को बाधने के पश्चात् एकेन्द्रियजाति की बधावलिका के चरम समय मे जघन्य स्थिति की उदीरणा होती है, कहने का कारण यह है कि बधावलिका पूर्ण होने के अनन्तरवर्ती समय मे बधावलिका के प्रथम समय मे बाधी गई लता का भी उदय होने से उदी-

---

1 एकेन्द्रियजाति की प्रतिपक्षी द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय और पचेन्द्रिय जाति है तथा स्थावर सूक्ष्म और साधारण नाम की प्रतिपक्षी अनुक्रम मे त्रस बादर और प्रत्येक नाम है।

रणा होती है और वैसा हो तो उदीरणा मे स्थिति बढ जाती है। इसलिए बधावलिका के चरम समय मे जघन्य उदीरणा होती है, यह कहा है।

जिस तरह मे एकेन्द्रियजाति की जघन्य स्थिति-उदीरणा का निर्देश किया है, उसी प्रकार से स्थावर सूक्ष्म और साधारण नामकर्म की भी जघन्य स्थिति-उदीरणा जानना चाहिये। उन तीनो की प्रतिपक्ष प्रकृति अनुक्रम मे त्रस, बादर और प्रत्येक नाम है जैमे कि स्थावरनाम की अति जघन्यस्थिति की सत्ता वाला एकेन्द्रिय जितनी अधिक वार त्रसनामकर्म बाध सके, उतनी अधिक बार बाधे, तत्पश्चात् स्थावरनामकर्म बाधना प्रारम्भ करे तो उसकी बधावलिका के चरम समय मे वह एकेन्द्रिय स्थावरनामकर्म की जघन्यस्थिति को उदीरणा करता है। इमी प्रकार सूक्ष्म आदि के लिये भी समझ लेना चाहिये। तथा—

एकेन्द्रिय के भव मे से आगत द्वीन्द्रियादि जीव अपनी-अपनी जाति की इसी प्रकार जघन्य स्थिति की उदीरणा करते है। जिसका तात्पर्य इस प्रकार है - कोई जघन्य स्थिति की सत्ता वाला एकेन्द्रिय उस भव मे से निकलकर द्वीन्द्रिय मे उत्पन्न हो, वहाँ पूर्व मे बाधी हुई द्वीन्द्रियजाति का अनुभव करना प्रारम्भ करे। अनुभव के—उदय के प्रथम समय से लेकर दीर्घकाल पर्यन्त एकेन्द्रियजाति का बध करे और उसके बाद त्रीन्द्रियजाति दीर्घकालपर्यन्त बाधे। इसी प्रकार चतुरिन्द्रिय और पचेन्द्रिय जाति को क्रमपूर्वक बाधे। किन्तु मात्र जिस जाति की जघन्य स्थिति की उदीरणा कहना हो उस जाति को अत मे बाधे इतना विशेप है। इस प्रकार चार बडे अन्तर्मुहूर्त व्यतीत होते है, उतने काल पर्यन्त द्वीन्द्रिय जाति को अनुभव द्वारा कम करे, उसके बाद द्वीन्द्रिय जाति को बाधना प्रारम्भ करे। उसकी बधावलिका के चरम समय मे एकेन्द्रिय भव मे मे जितनी जघन्य स्थिति की सत्ता लेकर आया था, उसकी अपेक्षा चार अन्तर्मुहूर्त न्यून द्वीन्द्रियजाति की जघन्य स्थिति की उदीरणा करता है।

क्रमपूर्वक चार जाति के बध का और बधावलिका के चरम समय मे उदीरणा का जो कारण एकेन्द्रियजाति की जघन्यस्थिति की उदीरणा के प्रसग मे कहा है, वही यहाँ भी जानना चाहिये ।

इसी प्रकार त्रीन्द्रिय और चतुरिन्द्रिय जातिनाम की जघन्यस्थिति उदीरणा भी कहना चाहिये । तथा—

दुभगाइनीयतिरिदुगअसारसघयण नोकसायाण ।
मणुपुव्वऽपज्जतइयस्स सन्निमेव इगागयगे ॥३४॥

शब्दार्थ—**दुभगाइ**—दुर्भग आदि, **नीय**—नीचगोत्र, **तिरिदुग**—तिर्यचद्विक **असारसघयण**—असार सहनन—प्रथम को छोडकर शेप पाच सहनन, **नोकसायाण** नोकपायो की, **मणुपुव्व**—मनुष्यानुपूर्वी, **अपज्जतइयस्स**—अपर्याप्तनाम, तीसरे वेदनीय कर्म की, **सन्निमेव**—सज्ञी इसी प्रकार, **इगागयगे** — एकेन्द्रिय मे से आये हुए ।

गाथार्थ—एकेन्द्रिय मे से आये सज्ञी मे दुर्भगादि, नीचगोत्र, तिर्यचद्विक, असार सहनन, नोकषाय, मनुष्यानुपूर्वी, अपर्याप्त, तीसरे वेदनीय कर्म की जघन्य स्थिति-उदीरणा होती है ।

विशेषार्थ—दुर्भग आदि तीन—दुर्भग, अनादेय और अयश कीर्ति, नीचगोत्र, तिर्यचद्विक—तिर्यंचगति, तिर्यचानुपूर्वी, असारसहनन—प्रथम के सिवाय शेप पाच सहनन, नोकषाय[1]—हास्य, रति, अरति, शोक, ये चार तथा मनुष्यानुपूर्वी, अपर्याप्तनाम और तीसरा साता-असाता रूप वेदनीय कर्म, कुल मिलाकर उन्नीस प्रकृतियो की जघन्य

---

१ वेदत्रिक के लिये आगे कहा जायेगा और भय एव जुगुप्सा के लिये पूर्व मे कहा जा चुका है । अतएव यहाँ नोकषाय शब्द से हास्यादि उक्त चार प्रकृतियो का ग्रहण किया है ।

स्थिति-उदीरणा एकेन्द्रिय भव मे से आये[1] सज्ञी पचेन्द्रिय मे होती है।

जिसका आशय इस प्रकार है—जघन्य स्थिति की सत्ता वाला एके-न्द्रिय-एकेन्द्रिय भव मे से निकलकर पर्याप्त सज्ञी पचेन्द्रिय मे उत्पन्न हो। उत्पत्ति के प्रथम समय से लेकर दुर्भगनामकर्म का अनुभव करता हुआ दीर्घ अन्तर्मुहूर्त पर्यन्त सुभगनाम को बाधे और उसके बाद दुर्भगनाम बाधना प्रारम्भ करे, उसके बाद बधावलिका के चरम समय मे पूर्वबद्ध दुर्भगनामकर्म की जघन्य स्थिति की उदीरणा करता है।

इसी प्रकार अनादेय, अयश कीर्ति और नीचगोत्र को भी जघन्य स्थिति—उदीरणा कहना चाहिये। मात्र वहाँ आदेय, यश कीर्ति और उच्चगोत्र रूप प्रतिपक्षी प्रकृतियो का अनुक्रम से बध जानना चाहिये। तथा—

सर्व जघन्य स्थिति की सत्ता वाला बादर तेज और वायुकाय का

---

१ यहाँ दुभगत्रिक आदि उन्नीस प्रकृतियो की जघन्य स्थिति-उदीरणा एके-न्द्रिय मे से आये सज्ञी पचेन्द्रिय जीव की बताई है परन्तु मनुष्यानुपूर्वी और पाच सहनन के विना तेरह प्रकृतियो का उदय एकेन्द्रियादि जीवो के भी होता है। एकेन्द्रियादि जीवो मे जघन्य स्थिति की उदीरणा न बताकर सज्ञी पचेन्द्रिय मे ही बताने का कारण यह है कि शेष जीवो की अपेक्षा सज्ञी पचेन्द्रिय जीवो के परावतमान बधयोग्य प्रत्येक प्रकृति का बधकाल सख्यातगुणा है, जिससे एकेन्द्रियादि जीवो की अपेक्षा सज्ञी पचेन्द्रिय मे अधिक जघन्य स्थिति-उदीरणा प्राप्त होती है। इसी कारण एकेन्द्रिय मे से आये हुए पचेन्द्रिय जीव ही बताये है।

जीव[1] पर्याप्त सज्ञी पचेन्द्रिय तिर्यंच मे उत्पन्न हो, वहाँ भव के प्रथम समय से लेकर बडे अन्तर्मुहूर्त पर्यन्त मनुष्यगति का बध करे और उसके बाद तिर्यचगति बाधना प्रारम्भ करे। बधावलिका के चरम समय मे पूर्वबद्ध उस तिर्यचगति की जघन्य स्थिति की उदीरणा करता है।

तिर्यचगत्यानुपूर्वी की जघन्य स्थिति-उदीरणा भी इसी प्रकार जानना चाहिये किन्तु मात्र विग्रहगति मे और उसके तीसरे समय मे होती है। तिर्यंचगति का उदय तो विग्रह-अविग्रह दोनो स्थानो पर होता है, परन्तु आनुपूर्वी का उदय तो विग्रहगति मे ही होता है। इसलिये उसकी जघन्य स्थिति की उदीरणा विग्रहगति मे और अधिक काल निकालने के लिये तीसरा समय कहा है।

इसी प्रकार असार पाच सहननो मे से वेद्यमान सहनन को छोड कर शेष पाचो सहननो का बधकाल अति दीर्घ और उसके बाद वेद्यमान सहनन का बध कहना चाहिये एव बधावलिका के चरम समय मे वेद्यमान असार सहनन की जघन्य स्थितिउदीरणा होती है।[2]

हास्य, रति की जघन्य स्थिति-उदीरणा साता की तरह और शोक-अरति की जघन्य स्थिति-उदीरणा असातावेदनीय की तरह कहना चाहिये।

---

१ अन्य एकेन्द्रियो की अपेक्षा तेजस्काय, वायुकाय मे तिर्यंचगतिनाम की स्थिति की जघन्य सत्ता होती है ऐसा ज्ञात होता है, जिससे उन दोनो का ग्रहण किया है। परावर्तमान प्रकृतिया उनकी विरोधिनी अन्य प्रकृतिया बधती है तब अन्तर्मुहूर्त पर्यन्त ही बधती है। इसीलिये अन्तर्मुहूर्त बधकाल का संकेत किया है। अपर्याप्त अवस्था मे देव, नरकगति का बध होता नही इसलिये मात्र मनुष्यगति का बध ग्रहण किया है।

२ जघन्य स्थिति की उदीरणा करने का क्रम जातिनामकर्म की तरह ही जानना चाहिए।

अल्पातिअल्प मनुष्यानुपूर्वी की स्थिति की सत्ता वाला एकेन्द्रिय एकेन्द्रिय भव मे से निकलकर मनुष्य मे उत्पन्न हो। विग्रहगति मे वर्तमान वह मनुष्य अपनी आयु के तीसरे समय मे मनुष्यानुपूर्वी की जघन्य स्थिति की उदीरणा करता है। तथा—

अपर्याप्तनाम की अति जघन्य स्थिति की सत्ता वाला एकेन्द्रिय एकेन्द्रिय भव मे से निकलकर अपर्याप्त सज्ञी पचेन्द्रिय मे उत्पन्न हो। भव के प्रथम समय से लेकर वडे अन्तर्मुहूर्त पर्यन्त पर्याप्त नामकर्म का बन्ध करे और उसके बाद अपर्याप्त नामकर्म बाधना प्रारम्भ करे तो बधावलिका के चरम समय मे पूर्वबद्ध उस अपर्याप्तनामकर्म की जघन्य स्थिति की उदीरणा करता है।

सातावेदनीय की अति जघन्य स्थिति की सत्ता वाला एकेन्द्रिय एकेन्द्रियभव मे से निकलकर पर्याप्त सज्ञी पचेन्द्रिय मे उत्पन्न हो। उत्पत्ति के प्रथम समय से लेकर सातावेदनीय का अनुभव करता हुआ बडे अन्तर्मुहूर्त पर्यन्त असातावेदनीय को बाधे, उसके बाद पुन साता को बाधना प्रारम्भ करे तो बधावलिका के चरम समय मे पूर्वबद्ध सातावेदनीय की जघन्य स्थिति की उदीरणा करता है।

इसी प्रकार असातावेदनीय की भी जघन्य स्थिति-उदीरणा कहना चाहिये। मात्र सातावेदनीय के स्थान मे असातावेदनीय और असातावेदनीय के स्थान पर सातावेदनीय पद कहना चाहिये। तथा—

अमणागयस्स चिरठिइअन्ते देवस्स नारयस्स वा।
तदुवगगईणं आणुपुव्विण तइयसमयमि ॥३५॥

शब्दार्थ—**अमणागयस्स**—असज्ञी पचेन्द्रिय मे से आया हुआ, **चिरठिइअन्ते**—दीर्घ स्थिति के अन्त मे, **देवस्स**—देव के, **नारयस्सा**—नारक के, **वा**—अथवा, **तदुवगगईण**—तद् (वैक्रिय) अगोपाग, देवगति, नरकगति, **आणुपुव्विण**—आनुपूर्वी की, **तइयसमयमि**—तीसरे समय मे।

गाथार्थ—असज्ञी पचेन्द्रिय मे से आये हुए देव अथवा नारक के अपनी-अपनी आयु की दीर्घ स्थिति के अन्त मे वैक्रिय-अगोपाग,

नरक-गति, देवगति की तथा आनुपूर्वी की अपनी अपनी आयु के तीसरे समय मे जघन्य स्थिति-उदीरणा होती है।

विशेषार्थ—असज्ञी पचेन्द्रिय मे से निकलकर देव अथवा नारक मे आये हुए के अपनी अपनी आयु की दीर्घ स्थिति के अन्त मे वैक्रिय-अगोपाग, देवगति और नरकगति की जघन्य स्थिति की उदीरणा होती है तथा देवानुपूर्वी और नरकानुपूर्वी की अपनी-अपनी आयु के तीसरे समय मे जघन्य स्थिति-उदीरणा होती है।

इसका तात्पर्य यह है कि कोई असज्ञी पंचेन्द्रिय जीव देवगति आदि की अति अल्प स्थिति बाधकर और उसके बाद असज्ञी पचेन्द्रिय मे ही दीर्घकाल पर्यन्त[1] रहकर पल्योपम के असख्यातवे भाग प्रमाण आयु

---

1 यहाँ दीर्घकाल कितना, इसका सकेत नही किया है। परन्तु कोई पूर्वकोटि वर्ष की आयु वाला असज्ञी हो और उस आयु का अमुक थोडा भाग जाने के बाद जघन्य स्थिति मे उपर्युक्त तीन प्रकृतियो का बध करे, तत्पश्चात् बध न करे, इस प्रकार हो तो दीर्घकाल पर्यन्त असज्ञी मे रहना घटित हो सकता है। ऐसा जीव पल्योपम के असख्यातवे भाग प्रमाण देव अथवा नरक आयु बाधकर देव या नारक मे उत्पन्न हो। असज्ञी इससे अधिक आयु नही बाधते है। उतने काल वहाँ उदय, उदीरणा मे स्थिति कम करे, जिससे अपनी-अपनी आयु के चरम समय मे जघन्य स्थिति की उदीरणा घटित हो सकती है।

कदाचित् यह शका हो कि तेतीस सागरोपम के आयु वाले देव, नारक को चरम समय मे जघन्य स्थिति-उदीरणा क्यो नही कही ? तो इसका उत्तर यह है कि उतनी आयु की स्थिति बाधने वाला सज्ञी पर्याप्त ही होता है और वह उक्त प्रकृतियो की अन्त कोडाकोडी से कम स्थिति नही बाधता है और असज्ञी तो उक्त प्रकृतियो की पल्योपम के असख्यातवे भाग न्यून २/७ भाग ही जघन्य स्थिति बाधता है। जिससे असज्ञी मे से आये हुए देव, नारक के ही जघन्य स्थिति-उदीरणा सम्भवित है।

वाला देव अथवा नारक हो, तो अपनी अपनी आयु के चरम समय मे वर्तमान उस देव अथवा नारक के यथायोग्य देवगति, नरकगति और वैक्रिय-अगोपाग की जघन्य स्थिति की उदीरणा होती है तथा असज्ञी पचेन्द्रिय मे से आये हुए परन्तु विग्रहगति मे अपनी-अपनी आयु के तीसरे समय मे वर्तमान देव अथवा नारक के अनुक्रम से देवानुपूर्वी और नरकानुपूर्वी की जघन्य स्थिति उदीरणा होती है। तथा—

वेयतिग दिट्ठिदुगं सजलणाणं च पढमट्ठिईए।
समयाहिगालियाए सेसाए उवसमे वि दुसु ॥३६॥

शब्दार्थ—वेयतिग—वेदत्रिक की, **दिट्ठिदुग**—दृष्टिद्विक की, **सजलणाण**—सज्वलन कषायो की, **च**—और, **पढमट्ठिईए**—प्रथम स्थिति मे, **समयाहिगालियाए**—समयाधिक आवलिका के, **सेसाए**—शेष रहने पर, **उवसमे वि**—उपशम श्रेणि मे भी, **दुसु**—दोनो मे।

गाथार्थ——प्रथम स्थिति मे समयाधिक आवलिका प्रमाण स्थिति शेष रहने पर वेदत्रिक, दृष्टिद्विक, और सज्वलन कषायो की जघन्य स्थिति-उदीरणा होती है। सम्यक्त्वमोहनीय और सज्वलन लोभ की दोनो श्रेणि मे और शेष प्रकृतियो की क्षपक श्रेणि मे ही जघन्य स्थिति-उदीरणा होती है।

विशेषार्थ—जब अन्तरकरण (अन्तर डालने की क्रिया) प्रारम्भ करे तब नीचे की छोटी स्थिति प्रथम स्थिति और ऊपर की बडी स्थिति द्वितीय स्थिति कहलाती है। प्रथम स्थिति की समयाधिक आवलिका प्रमाण स्थिति शेष रहे, तब वेदत्रिक—स्त्री, पुरुष, नपु सक वेद, दृष्टिद्विक—सम्यक्त्व और मिथ्यात्व मोहनीय और सज्वलनकषाय—क्रोध, मान, माया और लोभ इन नौ प्रकृतियो की उदयावलिका से ऊपर की समय मात्र स्थिति ही उदीरणा योग्य होने से उस समय प्रमाण स्थिति की उदीरणा जघन्य स्थिति उदीरणा कहलाती है। मात्र सम्यक्त्वमोहनीय

और सज्वलन लोभ की उपशम, क्षपक दोनो श्रेणियो मे[1] और शेष प्रकृतियो की क्षपकश्रेणि मे ही जघन्य स्थिति-उदीरणा होती है। तथा—

> एगिंदागय अइहीणसत्त सण्णीसु मीसउदयंते।
> पवणो सट्ठिइ जहण्णगसमसत्त विउव्वियस्संते ॥३७॥

शब्दार्थ—**एगिन्दागय**—एकेन्द्रिय में से आया हुआ, **अइहीणसत्त**—अतिहीन सत्ता वाला, **सण्णीसु**—सज्ञी मे, **मीसउदयते**—मिश्रमोहनीय के उदय के अत मे, **पवणो**—वायुकाय, **सट्ठिइ**—स्वस्थिति, **जहण्णगसमसत्त**—जघन्य स्थिति के समान सत्ता वाला, **विउव्वियस्सते**—वैक्रिय (षट्क) के उदय के अत मे।

गाथार्थ—अतिहीन सत्ता वाला एकेन्द्रिय मे से निकलकर सज्ञी मे आया हुआ जीव उदय के अन्त मे मिश्रमोहनीय की तथा अपनी जघन्य स्थिति के समान वैक्रियषट्क की सत्ता वाला वायु-कायिक जीव उदय के अन्त मे वैक्रियषट्क की जघन्य स्थिति-उदीरणा करता है।

---

[1] यहाँ सम्यक्त्वमोहनीय और सज्वलन लोभ की दोनो श्रेणि मे और शेष प्रकृतियो की मात्र क्षपकश्रेणि मे ही जघन्य स्थिति-उदीरणा कही है। दोनो श्रेणि मे क्यो नही कही, इसका कारण समझ मे नही आया। क्योकि दोनो श्रेणियो मे प्रथम स्थिति की समयाधिक आवलिका प्रमाण स्थिति शेष रहे तब उदयावलिका से ऊपर की समय प्रमाण स्थिति ये अति जघन्यतम स्थिति है और उसकी उदीरणा जघन्य स्थिति-उदीरणा कहलाती है। तत्त्व बहुश्रुतगम्य है। मिथ्यात्व की तो प्रथम सम्यक्त्व प्राप्त करते प्रथम स्थिति की समयाधिक आवलिका स्थिति शेष रहे तब जघन्य स्थिति-उदीरणा सभावित है। क्योकि श्रेणि मे तो सर्वथा उपशम या क्षय करते उसका रसोदय नही होता।

विशेषार्थ—पल्योपम के असख्यातवे भाग न्यून एक सागरोपम प्रमाण अतिहीन मिश्रमोहनीय की स्थितिसत्ता वाला कोई एकेन्द्रिय एकेन्द्रिय भव मे से निकलकर सज्ञी पचेन्द्रिय मे उत्पन्न हो और वहाँ उसे जिस समय मे लेकर अन्तर्मुहूर्त के बाद मिश्रमोहनीय की उदीरणा दूर होगी उस समय वह मिश्रगुणस्थान प्राप्त करे। अन्त-र्मुहूर्त के चरम समय मे—मिश्रगुणस्थान के चरम समय मे वह जीव मिश्रमोहनीय की जघन्य स्थिति-उदीरणा करता है। एकेन्द्रिय को कम से कम जितनी स्थिति की सत्ता हो सकती है, उससे हीन स्थिति वाली मिश्रमोहनीय प्रकृति उदीरणायोग्य नही रहती है। क्योकि पल्योपम के असख्यातवे भाग न्यून सागरोपम से भी जब स्थिति कम होती है तब मिथ्यात्वमोहनीय का उदय सभव होने से मिश्रमोहनीय की उद्वलना होना सम्भव है।[1] तथा—

बध्यमान नामकर्म की प्रकृतियो की जितनी जघन्य स्थितिसत्ता हो सकती है, उतनी यानि कि पल्योपम के असख्यातवे भाग न्यून सागरोपम के सात भाग मे से दो भाग (२/७) प्रमाण वैक्रियषट्क—वैक्रियशरीर, वैक्रियसघात, वैक्रियबधनचतुष्टय—की स्थिति की सत्ता वाला वायु-

---

१ एकेन्द्रिय कम से कम पल्योपम के असख्यातवें भाग न्यून सागरोपम के तीन भाग, दो भाग सागरोपम आदि स्थिति तो बाधते हैं, जिससे बध्यमान प्रकृतियो की स्थितिसत्ता उससे तो कम हो नही सकती। अबध्यमान वैक्रियषट्क आदि प्रकृतियो की उससे भी जब स्थिति कम होती है तब उद्वलना सभव होने से वह उदययोग्य नही रहता है। इसीलिये मिश्रमोहनीय के लिए कहा है कि पल्योपम के असख्यातवे भाग न्यून सागरोपम से भी जब उसकी स्थितिसत्ता कम होती है तब उसकी उद्वलना होती है। इसीलिये मिश्रमोहनीय की पल्योपम के असख्यातवे भाग न्यून सागरोपम प्रमाण स्थिति जघन्य उदीरणायोग्य कही है—उससे न्यून नही। क्योकि उससे हीन स्थिति उदययोग्य ही नही रहती है।

का क्षय करके सर्वार्थसिद्ध महाविमान मे उत्पन्न हो। सर्वार्थसिद्ध विमान की तेतीस सागरोपम प्रमाण आयु पूर्ण करके पूर्व कोटि वर्ष की आयु से मनुष्य मे उत्पन्न हो और मनुष्यभव मे आठ वर्ष की उम्र होने के बाद चारित्र ग्रहण करे और उतने काल न्यून पूर्वकोटि वर्ष प्रमाण सयम का पालन कर अत मे आहारक शरीर की विकुर्वणा करने वाला आहारकसप्तक के उदय के बाद कि जिस समय आहारक शरीर बिखर जायेगा और उदय का अत होगा उस अत सनय मे उसकी जघन्य स्थिति-उदीरणा करता है।

मनुष्यभव मे देशोन पूर्वकोटि प्रमाण सयम के पालन के कारण उतने काल आहारक सप्तक की सत्तागत स्थिति का क्षय होता है और अन्त मे अल्प स्थिति सत्ता मे रहती है। इसीलिए पूर्वकोटि वर्ष के अन्त मे आहारकशरीर करने वाले को जघन्य स्थिति की उदीरणा बतलाई है।

चार बार मोहनीय का सर्वोपशम कहने का कारण यह है कि उस स्थिति मे आहारकसप्तक मे सक्रमित होने वाली प्रकृतियो का स्थिति-घात होता है। जिससे आहारक के सक्रमयोग्य स्थान मे अल्प स्थिति का सक्रम होता है तथा उस-उस समय अत्यन्त विशुद्ध परिणाम के योग से उसकी बधयोग्य भूमिका मे अल्प स्थिति का बध होता है। सर्वार्थ-सिद्धि मे उतने काल प्रदेशोदय से स्थिति कम करता है और नवीन बाधता नही। इसी कारण चार बार मोहनीय का उपशम और उसके बाद क्षायिक सम्यक्त्व प्राप्त कर सर्वार्थसिद्ध विमान मे उत्पन्न होने का सकेत किया है। तथा—

खीणताण खीणे मिच्छत्तकमेण चोद्दसण्हपि।
सेसाण सजोगते भिण्णमुहुत्तट्ठिईगाणं ॥३९॥

शब्दार्थ—**खीणताण खीणे**—क्षीणमोहगुणस्थान मे जिनका क्षय होता है, **मिच्छत्तकमेण**—मिथ्यात्व के क्रम से, **चोद्दसण्हपि**—चौदह प्रकृतियो की भी **सेसाण**—शेष की, **सजोगन्ते**—सयोगिकेवलीगुणस्थान के अन्त मे, **भिण्णमुहुत्तट्ठिईगाण**—अन्तर्मुहूर्त की स्थिति वाली।

गाथार्थ—क्षीणमोहगुणस्थान मे जिनका क्षय होता है, ऐसी चौदह प्रकृतियो की मिथ्यात्व के क्रम मे क्षीणमोहगुणस्थान मे तथा अन्तर्मुहूर्त स्थिति वाली शेष प्रकृतियो की सयोगिकेवलीगुणस्थान के अन्त समय मे जघन्य स्थिति-उदीरणा होती है।

विशेषार्थ—क्षीणमोहगुणस्थान मे जिनका सत्ता मे से नाश होता है, ऐसी ज्ञानावरणपचक, दर्शनावरणचतुष्क और अन्तरायपचक रूप चौदह प्रकृतियो की क्षीणमोहगुणस्थान मे ही मिथ्यात्व की रीति से यानि जैसे मिथ्यात्व की उदययोग्य समयाधिक आवलिका प्रमाण स्थिति शेष रहे तब समय प्रमाण स्थिति की जघन्य स्थिति-उदीरणा होती है, उसी प्रकार ज्ञानावरणपचक आदि चौदह प्रकृतियो की समयाधिक आवलिका प्रमाण स्थिति सत्ता मे शेष रहने पर जघन्य स्थिति-उदीरणा होती है।[1] तथा—

मनुष्यगति, पचेन्द्रियजाति, प्रथम सहनन, औदारिकसप्तक, सस्थानषट्क, उपघात, पराघात, उच्छ्वास, प्रशस्त अप्रशस्त विहायोगति, त्रस, बादर, पर्याप्त, प्रत्येक, सुभग, सुस्वर दुस्वर, आदेय, यश-कीर्ति, तीर्थकरनाम और उच्चगोत्र रूप बत्तीस और निर्माण आदि ध्रुवोदया तेतीस कुल पैसठ प्रकृतियो की अन्तर्मुहूर्त प्रमाण स्थिति की सयोगिकेवलीगुणस्थान के चरम समय मे जघन्य स्थिति-उदीरणा होती है।

सयोगिकेवली के चरम समय मे सत्तागत सभी प्रकृतियो की स्थिति अन्तर्मुहूर्त प्रमाण ही सत्ता मे होती है, जिसमे उदयावलिका से ऊपर की अन्तर्मुहूर्त प्रमाण स्थिति ही जघन्य उदीरणायोग्य रहती है। इसीलिए उक्त पैसठ प्रकृतियो की अन्तर्मुहूर्त प्रमाण ही जघन्य स्थिति-उदीरणा कही है। तथा—

---

१ मिथ्यात्व और चौदह प्रकृतियो मे मात्र समय प्रमाण जघन्य स्थिति का ही साम्य है, अन्य नही। क्योकि मिथ्यात्व का क्षय तो चौथे मे सातवें गुणस्थान तक मे ही हो जाता है।

चारो आयु की भी उन-उनकी उदीरणा के अन्त मे समयाधिक आवलिका प्रमाण स्थिति सत्ता मे शेष रहे, तव जघन्य स्थिति-उदीरणा समझना चाहिए।

स्थिति-उदीरणा के सम्वन्ध मे विशेष वक्तव्य इस प्रकार है—

स्थिति-उदीरणा मे कितने ही स्थान पर ऐसा आया है कि बधावलिका के जाने के बाद उदयावलिका से ऊपर की स्थिति पतद्ग्रह प्रकृति की उदयावलिका मे ऊपर सक्रमित होती है। ऐसा क्यो होता है? तो उसका कारण यह है कि जिसकी स्थिति सक्रमित होती हे, उसकी उदयावलिका से ऊपर की स्थिति सक्रमित होती है। अन्य प्रकृतिनयनसक्रम मे स्थान का परिवर्तन नही होने से जिसमे सक्रमित होती है, उसकी उदयावलिका से ऊपर सक्रमित होती है, यह कहा है। यानि उस उदयावलिका को मिलाने पर एक आवलिकान्यून उसकी उत्कृष्ट सत्ता होती है। जैसे कि नरकगति की उत्कृष्ट स्थिति वाधे, जिस समय उसकी बधावलिका पूर्ण हो, उस समय देवगति बाधना प्रारम्भ करे, वध्यमान देवगति मे उदयावलिका से ऊपर का नरकगति का दलिक सक्रमित होता है। उदयावलिका मे ऊपर का नरकगति का दलिक देवगति की उदयावलिका से ऊपर सक्रमित हो, यानि उस उदयावलिका को मिलाने पर एक आवलिकान्यून वीस कोडाकोडी सागर प्रमाण देवगति की उत्कृष्ट स्थिति सत्ता मे होती है तथा उसकी सक्रमावलिका के जाने के वाद उदयावलिका से ऊपर का दलिक अन्यत्र सक्रमित होता है। इसी प्रकार अन्यत्र भी समझना चाहिए।

इस प्रकार से स्थिति उदीरणा का निरूपण जानना चाहिए।[1] अब क्रमप्राप्त अनुभाग-उदीरणा की प्ररूपणा प्रारम्भ करते है।

अनुभाग-उदीरणा

अणुभागुदीरणाए घाइसण्णा य ठाणसन्ना य।
सुहया विवागहेउ जोत्थ विसेसो तय वोच्छ ॥४०॥

---

१ स्थिति-उदीरणा विषयक विवरण का प्रारूप परिशिष्ट मे देखिये।

शब्दार्थ—अणुभागुदीरणाए—अनुभाग-उदीरणा में, घाइसण्णा—घाति, सज्ञा, य—और, ठाणसन्ना—स्थानसज्ञा, य—और सुहया—शुभाशुभत्व, विवाग—विपाक, हेउ—हेतु, जोत्थ—जो यहाँ विसेसो—विशेष, तय—उसको, वोच्छ—कहूँगा।

गाथार्थ—उदय के प्रसग मे जैसा घातिसज्ञा, स्थानसज्ञा, शुभाशुभत्व, विपाक और हेतु के लिए कहा गया है, वैसा ही अनु-भाग-उदीरणा मे भी समझना चाहिए। लेकिन यहाँ जो विशेष है, उसको मै कहूगा।

विशेषार्थ—अनुभाग उदीरणा के सम्बन्ध मे छह विचारणीय विषय है यथा—१ सज्ञा-प्ररूपणा, २ शुभाशुभ-प्ररूपणा, ३ विपाक-प्ररूपणा, ४ हेतु-प्ररूपणा, ५ साद्यादि-प्ररूपणा और ६ स्वामित्व-प्ररूपणा।

इनमे मे सज्ञा, शुभाशुभत्व, विपाक और हेतु के बारे मे मात्र सूचना करते है कि सज्ञा दो प्रकार की है—१ घातिसज्ञा, २ स्थान-सज्ञा। इनमे घातिसज्ञा तीन प्रकार की है—१ सर्वघातिसज्ञा, २ देश-घातिसज्ञा और ३ अघातिसज्ञा। स्थानसज्ञा के चार प्रकार है—१ एक-स्थानक, २ द्विस्थानक, ३ त्रिस्थानक और ४ चतु स्थानक। शुभत्व और अशुभत्व के भेद मे शुभाशुभत्व के दो प्रकार है। यथा—मति-ज्ञानावरणादिक अशुभ है और सातावेदनीय आदि शुभ है। विपाक के चार प्रकार है—१ पुद्गलविपाक, २ क्षेत्रविपाक, ३ भवविपाक और ४ जीवविपाक। द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव और भव के भेद से हेतु के पाच प्रकार है।

इनमे घातिसज्ञा, स्थानसज्ञा, शुभाशुभत्व, विपाक और हेतु जैसे बध और उदय के आश्रय से पूर्व मे कहे गये है, उसी प्रकार यहाँ—अनुभाग-उदीरणा मे—भी जानना चाहिए। अर्थात् वहाँ जिन प्रकृतियो को बध, उदय की अपेक्षा सर्वघाति आदि कहा गया हो, उसी प्रकार यहाँ उदीरणा मे भी समझना चाहिए। लेकिन उनके सम्बन्ध मे जो कुछ भी विशेष है, उसका यहाँ निर्देश किया जा रहा है।

संज्ञा सम्बन्धी विशेष

पुरिसित्थिविग्ध अच्चक्खुचक्खुसम्माण इगिदेठाणो वा ।
मणपज्जवपु साण वच्चासो सेस बधसमा ॥४१॥

शब्दार्थ—**पुरिसित्थि**—पुरुषवेद, स्त्रीवेद, **विग्घ**—अतराय, **अच्चक्खु-चक्खुसम्माण**—अचक्षुदर्शनावरण, चक्षुदर्शनावरण, सम्यक्त्वमोहनीय की, **इगिदुठाणो**—एकस्थानक, द्विस्थानक, **वा**—और, **मणपज्वपु साण**—मनपर्याय ज्ञानावरण, नपुसकवेद, **वच्चासो**—विपरीतता है, **सेस**—शेप की, **बधसमा**—बध के समान ।

गाथार्थ—पुरुषवेद, स्त्रीवेद, अतराय, अचक्षुदर्शनावरण, चक्षुवर्शनावरण और सम्यक्त्वमोहनीय के एक और द्वि स्थानक रस की उदीरणा होती है तथा मनपर्यायज्ञानावरण और सपु सक-वेद के सम्बन्ध मे विपरीतता है शेष प्रकृतियो की बध के समान उदीरणा होती है ।

विशेषार्थ—गाथा मे अनुभाग-उदीरणा के प्रसग मे सज्ञा से सम्ब-न्धित विशेषता का सकेत किया है—

पुरुषषेद, स्त्रीवेद, अतरायपचक, अचक्षुकदर्शनावरण, चक्षुदर्श-नावरण, और सम्यदत्वमोहनीय की अनुभाग-उदीरणा एक स्थानक और द्विस्थानक रस की जानना चाहिये। जिसका विशषता से साथ स्पष्टीकरण इस प्रकार है—

पुरुषवेद, अतरायपचक, अचक्षुदर्शनावरण, और चक्षुदर्शनावरण का बधापेक्षा अनुभाग का विचार करे तो एक द्वि, त्रि, चतु स्थानक इस तरह चार प्रकार का रस बधता है, किन्तु इन प्रकृतियो का रस की उदारणापेक्षा विचार किया जाये तो जघन्य से एकस्थानक और मद द्विस्थानक रस की उदीरणा होती है और उत्कृष्ट मे सर्वोत्कृष्ट द्विस्थानक रस की ही उदीरणा होती है परन्तु त्रि या चतु स्थानक रस की उदीरणा नही होती है ।

स्त्रीवेद का द्विस्थानक, त्रिस्थानक और चतुःस्थानक इस तरह तीन प्रकार का रसबंध होता है परन्तु उसकी अनुभाग-उदीरणा जघन्य एकस्थानक और मंद द्विस्थानक रस की एवं उत्कृष्ट सर्वोत्कृष्ट द्विस्थानक रस की होती है।

सम्यक्त्वमोहनीय का बंध नहीं होने से उसके विषय में तो कुछ कहना नहीं है, परन्तु उदीरणा होती है, इसलिये उसके सम्बन्ध में विशेष का निर्देश करते हैं कि सम्यक्त्वमोहनीय की उत्कृष्ट द्विस्थानक रस की और जघन्य एकस्थानक रस की उदीरणा होती है तथा उसका जो एकस्थानक या द्विस्थानक रस है, वह देशघाती है।

मनपर्यायज्ञानावरण और नपुंसकवेद के लिये बंध में जो कहा है, उससे यहाँ विपरीत जानना चाहिये। यानि बंधाश्रयी नपुंसकवेद का जिस प्रकार का रस कहा है, उस प्रकार का रस मनपर्यायज्ञानावरण की उदीरणा में और बंधाश्रयी मनपर्यायज्ञानावरण का जैसा रस कहा है वैसा नपुंसकवेद की उदीरणा में समझना चाहिये। वह इस प्रकार—मनपर्यायज्ञानावरण का बंधापेक्षा एकस्थानक, द्विस्थानक, त्रिस्थानक और चतुःस्थानक इस तरह चार प्रकार का रस है और यहाँ उत्कृष्ट उदीरणापेक्षा चतुःस्थानक और अनुत्कृष्ट—मध्यम उदीरणापेक्षा चतुःस्थानक त्रिस्थानक और द्विस्थानक रस है। नपुंसकवेद का अनुभाग बन्ध की अपेक्षा चतुःस्थानक त्रिस्थानक और द्विस्थानक इस तरह तीन प्रकार का रस है और यहाँ उत्कृष्ट उदीरणापेक्षा चतुःस्थानक और अनुत्कृष्ट—मध्यम उदीरणापेक्षा चतुःस्थानक, त्रिस्थानक, द्विस्थानक और एकस्थानक रस है।

प्रश्न—जब नपुंसकवेद का एकस्थानक रस बंध होता ही नहीं है तो उदीरणा कैसे होती है?

उत्तर—यद्यपि नपुंसकवेद का एकस्थानक रस बंधता नहीं है, परन्तु क्षय के समय रसघात करते सत्ता में उसका एकस्थानक रस संभव है। इसीलिये जघन्य से उसके एकस्थानक रस की उदीरणा कही है। तथा—

शेप देशघाति प्रकृतियो का बध मे जिस तरह चारो प्रकार का रस कहा है, उसी तरह अनुभाग-उदीरणा मे भी चारो प्रकार का रस जानना चाहिये ।

देशघाति प्रकृतियो का घातित्व विषयक विशेष

देसोवघाइयाण उदए देसो व होइ सव्वो य ।
देसोवघाइओ च्चिय अचक्खुसम्मत्तविग्घाणं ॥४२॥

शब्दार्थ—**देसोवघाइयाग**—देशघाति प्रकृतियो की, **उदए**—उदय—उदीरणा मे, **देसो**—देशघाति, **व**—अथवा, **होइ**—होता है, **सव्वो**—सर्वघाति, **य**—और, **देसोवघाइओ च्चिय**—देशघाति ही, **अचक्खुसम्मत्तविग्घाण**—अचक्षुदर्शनावरण, सम्यक्त्वमोहनीय और अतराय का ।

गाथार्थ—देशघाति प्रकृतियो का उदय-उदीरणा मे देशघाति अथवा सर्वघाति रस होता है तथा अचक्षुदर्शनावरण, सम्यक्त्व-मोहनीय और अतराय का देशघाती ही रस उदय-उदीरणा मे होता है ।

विशेषार्थ—पूर्व गाथा मे जैसे यह कहा गया है कि किस प्रकार के रस की उदीरणा होती है, उसी प्रकार इस गाथा मे यह स्पष्ट करते है कि वह रस कैसा होता है—घाति या अघाति ? देशघाति—ज्ञाना-वरणचतुष्क, चक्षुदर्शनावरण, अवधिदर्शनावरण, नवनोकषाय और सज्वलनचतुष्करूप—प्रकृतियो का उदीरणारूप उदय मे यानि उदारणा मे देशघाति रस होता है, उसी प्रकार सर्वघाति रस भी होता है किन्तु अचक्षुदर्शनावरण, सम्यक्त्वमोहनीय और अतरायपचक के रस की उदीरणा मे देशघाति रस ही होता है, किन्तु सर्वघाति रस नही होता है । तथा—

घाय ठाण च पडुच्च सव्वघाईण होई जह बधे ।
अग्घाईण ठाण पडुच्च भणिमो विसेसोऽत्थ ॥४३॥

शब्दार्थ—घाय—घातित्व, ठाण—स्थान, च—और, पडुच्च—अपेक्षा, सव्वघाईण—सर्वघाति प्रकृतियो का, होइ—होता है, जह—जैसा, बधे—वध मे, अघाईण—अघाति प्रकृतियो का, ठाण—स्थान, पडुच्च—अपेक्षा, भणिमो—कहेंगे, विसेसोऽत्थ—जो विशेष है उसको यहाँ।

गाथार्थ—सर्वघाति प्रकृतियो का घातित्व और स्थान की अपेक्षा जैसा वध मे कहा है, वैसा उदीरणा मे भी जानना चाहिये। अघाति प्रकृतियो का स्थान की अपेक्षा जो विशेष है, उसको यहाँ कहेंगे।

विशेषार्थ—केवलज्ञानावरण, केवलदर्शनावरण, आदि की बारह कषाय, मिथ्यात्वमोहनीय और पाच निद्रारूप सर्वघाति प्रकृतियो के रस का घातिसज्ञा और स्थानसज्ञा की अपेक्षा विचार करे तो उन प्रकृतियो का वध मे जैसा रस होता है, वैसा ही उदीरणा मे भी समझना चाहिये।

इसका तात्पर्य यह हुआ कि जैसे इन प्रकृतियो का वध मे चतु-स्थानक, त्रिस्थानक और द्विस्थानक रूप तीन प्रकार का रस कहा है, एव उन तीनो प्रकार के रस को जैसे सर्वघाति वताया है, उसी प्रकार उदीरणा मे भी जानना चाहिये। यानि उन प्रकृतियो के चतु, त्रि और द्विस्थानक रस की उदीरणा होती है और वह सर्वघाति ही होता है। मात्र उत्कृष्ट रस की उदीरणा मे चतु स्थानक ही और अनुत्कृष्ट—मध्यम रस की उदीरणा मे तीनो प्रकार का रस होता है।

इस प्रकार से घाति प्रकृतियो सम्बन्धी विशेष जानना चाहिये। अव एक सौ ग्यारह अघाती प्रकृतियो की उदीरणा मे स्थानाश्रयी विशेष कथन करते है।

अघाति प्रकृतियो का स्थानाश्रित विशेष

थावरचउ आयवउरलसत्ततिरिविगलमणुयतियगाणं।
नगोहाइचउण्ह एगिंदिउसभाइछण्हपि ॥४५॥

तिरिमणुजोगाण मीसगुरुयखरनर य देवपुव्वीण ।
दुट्ठाणिओच्चिय रसो उदए उद्दीरणाए य ॥४५॥

शब्दार्थ—**थावरचउ**—स्थावरचतुष्क, **आयव**—आतप, **उरलसत्त**—औदारिकसप्तक, **तिरिविगलमणुयतियगाण**—तिर्यंचत्रिक, विकलत्रिक, मनुष्यत्रिक, **नग्गोहाइचउण्ह**—न्यग्रोध आदि चतुष्कसस्थान, **एगिंदि**—एकेन्द्रिय जाति, **उसभाइछण्हपि**—वज्रऋषभनाराचादि सहननषट्क ।

तिरिमणुजोगाण—तिर्यंच और मनुष्य उदयप्रायोग्य, **मीस**—मिश्रमोहनीय, **गुरुयखर**- गुरु और कर्कश स्पर्श, **नर य देवपुव्वीण**—नरक और देव आनुपूर्वी की, **दुट्ठाणिओच्चिय**—द्विस्थानक ही, **रसो**—रस (अनुभाग), **उदए-उद्दीरणाए य**—उदय और उदीरणा मे ।

गाथार्थ—स्थावरचतुष्क, आतप, औदारिकसप्तक, तिर्यंचत्रिक, विकलत्रिक, मनुष्यत्रिक, न्यग्रोधसस्थान आदि चतुष्क, एकेन्द्रियजाति, वज्रऋषभनाराच आदि सहननषट्क रूप तिर्यंच और मनुष्य उदयप्रायोग्य तथा मिश्रमोहनीय, गुरु, कर्कश स्पर्श, देव-नरकानुपूर्वीनाम प्रकृतियो का उदय और उदीरणा मे द्विस्थानक रस ही होता है ।

विशेषार्थ—स्थावरचतुष्क—स्थावर, सूक्ष्म, अपर्याप्त और साधारण, आतप, औदारिकसप्तक, तिर्यंचत्रिक—तिर्यंचगति, तिर्यंचानुपूर्वी, तिर्यंचायु, विकलत्रिक—द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रियजाति, मनुष्यत्रिक—मनुष्यगति, मनुष्यानुपूर्वी, मनुष्यायु, न्यग्रोधादिचतुष्क—न्यग्रोधपरिमण्डल, सादि, वामन, और कुब्ज सस्थान, एकेन्द्रिय जाति तथा वज्रऋषभनाराच आदि छह सहनन रूप तिर्यंच और मनुष्य के उदयप्रायोग्य बत्तीस प्रकृति तथा मिश्रमोहनीय, गुरु, कर्कश स्पर्शनाम, देव और नरक आनुपूर्वीनाम ये पाँच कुल मिलाकर सैंतीस प्रकृतियो का उदय और उदीरणा मे द्विस्थानक रस ही होता है । क्योकि ये प्रकृतिया चाहे जैसे रस वाली बधे, लेकिन जीवस्वभाव से सत्ता मे रस

कम होकर उदय मे आने पर उदय और उदीरणा मे द्विस्थानक ही रस होता है। मात्र घातिसज्ञाश्रित मिश्रमोहनीय का रस सर्वघाति और शेष प्रकृतियो का रस अघाति है।[1]

अब शुभाशुभत्व विषयक विशेष का निर्देश करते है।

शुभाशुभत्व—विषयक विशेष

सम्मत्तमीसगाण असुभरसो सेसयाण बंधुत्तं ।
उक्कोसुदीरणा संतयमि छट्ठाणवडिए वि ॥४६॥

शब्दार्थ—**सम्मत्तमीसगाण**—सम्यक्त्व और मिश्रमोहनीय का **असुभरसो**—अशुभ रस **सेसयाण**—शेष प्रकृतियो का, **बधुत्त**—बध के समान **उक्कोसुदीरणा**—उत्कृष्ट उदीरणा, **सतयमि**—सत्ता मे, **छट्ठाणवडिए वि**—षट्स्थान पतित होने पर भी।

गाथार्थ—सम्यक्त्व और मिश्रमोहनीय का अशुभ रस है, शेष प्रकृतियो के विषय मे बध के समान है। सत्ता मे—अनुभाग की सत्ता मे षट्स्थानपतित होने पर भी उत्कृष्ट अनुभाग की उदीरणा होती है।

विशेषार्थ—सम्यक्त्व और मिश्रमोहनीय ये दोनो प्रकृति घाति होने से उनका रस अशुभ ही जानना चाहिए और इसी कारण ये दोनो प्रकृतिया रस की अपेक्षा पाप प्रकृतियाँ कहलाती है। शेष प्रकृतियो का शुभाशुभत्व बध के समान जानना चाहिए। यानि बध मे जिन

---

1 जिन प्रकृतियो के सम्बन्ध मे अमुक प्रकार के रस की उदीरणा होती है, ऐसा न कहा हो उनके लिए बधानुरूप समझना चाहिये। अर्थात् उन-उन प्रकृतियो का जघन्य-उत्कृष्ट जितना रस बन्ध होता हो उतना उदीरणा मे भी समजना चाहिये। मात्र अघाति प्रकृतियो का अनुभाग सवघातिप्रतिभाग सदृश होता है। अघाति प्रकृतियो का रस है तो अघाति लेकिन सवघाति के साथ जब तक अनुभव किया जाता है, तब तक उसके जैसा होकर अनुभव मे आता है।

प्रकृतियो को शुभ कहा हो, उनको उदीरणा मे भी शुभ और यदि अशुभ कहा हो तो अशुभ ही समझना चाहिए।

प्रश्न—किस प्रकार के रस की सत्ता मे रहता जीव उत्कृष्ट अनुभाग की उदीरणा करता है ?

उत्तर—उत्कृष्ट अनुभाग की सत्ता मे षट्स्थानपतित होने पर भी उत्कृष्ट रस की उदीरणा होती है। इसका तात्पर्य यह है कि जब सर्वोत्कृष्ट रस का बध हो तब सर्वोत्कृष्ट रस की सत्ता होती है। सत्ता मे वर्तमान वह सर्वोत्कृष्ट रस अनन्तभागहीन अथवा असख्यातभागहीन, सख्यातभागहीन, सख्यातगुणहीन, असख्यातगुणहीन या अनन्तगुणहीन हो तो भी उत्कृष्ट रस की उदीरणा होती है। इसका कारण यह है कि अनन्तानन्त स्पर्धको के अनुभाग का क्षय होने पर भी अनन्त स्पर्धक बध के समय जैसे रस वाले बँधे थे, वैसे ही रस वाले रहते है। जितने स्पर्धक बँधे, उन समस्त स्पर्धको मे रस कम नही होता है, परन्तु अमुक-अमुक स्पर्धको मे से अनन्तभागहीन या अनन्तगुणहीन आदि रस कम होता है। जिससे मूल—बधते समय जो रस बंधा था, वह सामुदायिक रस की अपेक्षा अनन्तगुणहीन अनन्तवे भाग रस शेप रहने पर भी उत्कृष्ट रस की उदीरणा होती है तो फिर असख्यातगुणहीन आदि रस शेष रहे[1] तब भी उत्कृष्ट रस की उदीरणा हो उसमे कुछ आश्चर्य नही है।

---

१ कुल सामुदायिक रस म से अनन्तवा भाग, असख्यातवा भाग या सख्यातवा भागरस जो कम होता है, वह अनुक्रम से अनन्तभागहीन, असख्यातभागहीन और सख्यातभागहीन तथा समस्त अनुभाग का अनन्तवा भाग, असख्यातवा भाग या सख्यातवा भागही सत्ता मे शेप रहे तब वह अनन्तगुणहीन, असख्यातगुणहीन या सख्यातगुणहीन हुआ कहलाता है। अनन्तभागहीन यानि मात्र अनन्तवा भाग ही न्यून और अनन्तगुणहीन हो यानि अनन्तवा भाग शेप रहे यह अर्थ समझना चाहिये। शेप भागहीन या गुणहीन मे भी ऊपर कहे अनुसार ही समझना चाहिए।

अब विपाकाश्रित विशेष का कथन करते हैं।

विपाकाश्रित विशेष

> मोहणीयनाणावरणं केवलिय दसणं विरियविग्घं।
> सपुन्नजीवदव्वे न पज्जवेसु कुणइ पागं ॥४७॥

शब्दार्थ—**मोहणीय नाणावरण**—मोहनीय, ज्ञानावरण, **केवलियदसण**—केवलदर्शनावरण, **विरियविग्घ**—वीर्यान्तराय, **सपुन्न जीवदव्वे**—सम्पूर्ण जीवद्रव्य मे, **न पज्जवेसु**—पर्यायो मे, **कुणइ**—करता है, **पाग**—विपाक।

गाथार्थ—मोहनीय, ज्ञानावरण, केवलदर्शनावरण और वीर्यान्तराय कर्म सम्पूर्ण जीवद्रव्य मे विपाक करता है, परन्तु सर्व पर्यायो मे विपाक नही करता है।

विशेषार्थ—मोहनीय की अट्ठाईस, ज्ञानावरण की पाच, केवलदर्शनावरण और वीर्यान्तराय ये पैंतीस प्रकृतिया सम्पूर्ण जीवद्रव्य मे विपाक उत्पन्न करती है, परन्तु समस्त पर्यायो मे उत्पन्न नही करती है। यानि ये पैंतीस प्रकृतिया द्रव्य से सम्पूर्ण जीवद्रव्य को घात करती है—दबाती है, परन्तु सम्पूर्ण पर्यायो को दबाने मे अशक्य होने से आवृत नही करती है।

इसका तात्पर्य यह हुआ कि उपर्युक्त प्रकृतियाँ अपने विपाक का अनुभव जीव के अमुक भाग को ही कराती है, अमुक भाग को नही, ऐसा नही है, परन्तु सम्पूर्ण जीवद्रव्य को कराती है, फिर भी उससे

समस्त सामुदायिक रस अनन्तभागादि हीन या अनन्तगुणविहीन होता है, किन्तु सत्तागत समस्त स्पर्धको मे से अनन्तभागहीनादि रस कम होता नही है। कितनेक स्पर्धक जैसे बँधे थे, वैसे ही सत्ता मे रह जाते है जिससे उत्कृष्ट रस के सत्ताकाल मे षट्स्थान पडने पर भी उदीरणा हो सकती है, जैसे उपशमश्रेणि मे किट्टिया होने पर भी अपूर्व स्पर्धक और पूर्वस्पर्धक भी सत्ता मे रहते है।

जीव मे विद्यमान अनन्त ज्ञानादि गुण सर्वथा घातित नही हो जाते है।

उपर्युक्त प्रकृतियो मे जो-जो सम्यक्त्व, चारित्र आदि गुणो को आच्छादित करती है, उन सबके अमुक-अमुक अश उद्घाटित रहते ही है। क्योकि समस्त अशो को आच्छादित करने की उन कर्मो मे शक्ति ही नही है। जीव स्वभाव से वे गुण सम्पूर्णतया आच्छादित हो भी नही सकते है। यदि पूर्ण रूप से दब जाये तो जीव अजीव हो जायेगा। जैसे सघन वादलो के रहने पर भी उनसे चन्द्र, सूर्य की प्रभा परिपूर्ण रूप से आच्छादित नही हो जाती है, परन्तु दिन-रात्रि का अन्तर ज्ञान हो, इतनी तो उद्घाटित रहती ही है, इसी प्रकार यहाँ भी समझना चाहिए। तथा—

गुरुलहुगाणतपएसिएसु चक्खुस्स सेसविग्घाण।
जोगेसु गहणधरणे ओहीण रुविदव्वेसु ॥४८॥

शब्दार्थ—**गुरुलहुगाणतपएसिएसु**—गुरुलघु द्रव्यो के अनन्त प्रादेशिक स्कन्धो मे, **चक्खुस्स**—चक्षुदर्शनावरण का, **सेसविग्घाण**—शेष अन्तराय कर्मो का, **जोगेसुगहणधरणे**—ग्रहण और धारण करने योग्य द्रव्यो मे, **ओहीण**—अवधिज्ञानदर्शन आवरणो का, **रुविदव्वेसु**—रूपी द्रव्यो मे।

गाथार्थ—गुरु-लघु द्रव्यो के अनन्त प्रादेशिक स्कन्धो मे, चक्षुदर्शनावरण का, ग्रहण-धारण करने योग्य पुद्गलो मे शेष अन्तराय कर्मो का और रूपी द्रव्यो मे अवधिज्ञान दर्शनावरणो का विपाक होता है।

विशेषार्थ—जिस गुण की जितने प्रमाण मे जानने आदि की शक्ति होती है, उसका आवारक कर्म उतने प्रमाण मे उन ज्ञानादि गुणो को आवृत्त करता है। जैसे कि अवधिज्ञान की मात्र रूपी द्रव्य को जानने की शक्ति है तो अवधिज्ञानावरण कर्म रूपी द्रव्य को जानने की शक्ति को ही आच्छादित करता है। तात्पर्य यह हुआ कि जिस गुण का जितना

और जो विषय[1] होता है, उतना और उस विषय को उसका आवरक कर्म आवृत्त करता है ।

अब इसी कथन को विशेष रूप मे स्पष्ट करते हैं—

गुरु-लघुपरिणामी अर्थात् आठ स्पर्श वाले अनन्त प्रादेशिक स्कन्धो का चक्षु द्वारा सामान्य ज्ञान नही होने देना चक्षुदर्शनावरण का विपाक है । क्योकि चक्षुदर्शन द्वारा गुरु-लघु परिणामी अनन्त प्रदेशो मे बने स्कन्ध ही जाने जा सकते है तथा शेष अतराय—दान, लाभ, भोग और उपभोग अन्तराय कर्मो का ग्रहण और धारण किये जा सके ऐसे पुद्गल द्रव्यो मे ही विपाक है । क्योकि जीव पुद्गलद्रव्य का अनन्तवा भाग ही दान मे दे सकता है, लाभ प्राप्त कर सकता है या भोग-उपभोग करता किन्तु समस्त पुद्गल द्रव्यो का नही । दानादि गुणो का उतना ही विषय है, जिससे उसको आवृत करने वाले कर्मो का विपाक भी उतने मे ही होता है ।

अवधिज्ञानावरण और अवधिदर्शनावरण कर्मो का विपाक रूपी द्रव्यो मे ही है—यानि वे कर्म अपनी शक्ति का अनुभव जीव को रूपी पदार्थो का सामान्य विशेष ज्ञान नही होने देने मे कराते है, अरूपी द्रव्यो मे उनका विपाक नही है । जीवो को अरूपी द्रव्य का ज्ञान नही होने देने मे अवधिज्ञान-दर्शनावरण कर्मो का उदय हेतु नही है, क्योकि वह उनका विषय नही है । तात्पर्य यह कि जितने विषय मे चक्षु-दर्शनादि का व्यापार है, उतने ही विषय मे चक्षुदर्शनावरण आदि कर्मो का भी व्यापार है । तथा—

सेसाण जह् बधे होइ विवागो उ पच्चओ दुविहो ।
भवपरिणामकओ वा निग्गुणसगुणाण परिणइओ ॥४६॥

---

१ जिस गुण से जो जाना जा सके जिस गुण का जो कार्य हो वह उसका विषय कहलाता है ।

शब्दार्थ—**सेसाण**—शेष प्रकृतियो का, **जहबधे**—बध मे कहे अनुसार, **होइ**—होता है, **विवागो**—विपाक, **उ**—और, **पच्चओ**—प्रत्यय, **दुविहो**—दो प्रकार का, **भवपरिणामकओ**—भव और परिणामकृत, **वा**—तथा, **निग्गुणसगुणाण**—निर्गुण और सगुण, **परिणइओ**—परिणति से।

गाथार्थ—शेष प्रकृतियो का विपाक बध मे कहे अनुसार उदीरणा मे भी जानना चाहिए। भवकृत और परिणामकृत इस तरह प्रत्यय के दो प्रकार है। तथा परिणामकृत प्रत्यय निर्गुण और सगुण परिणति से दो प्रकार का है।

विशेषार्थ—गाथा मे शेष प्रकृतियो के विपाक सम्बन्धी विशेष का कथन करने के पश्चात् भेद निरूपणपूर्वक प्रत्ययप्ररूपणा का विचार प्रारम्भ किया है। विपाक विषयक विशेष का आशय इस प्रकार है—

पूर्वोक्त प्रकृतियो से शेष रही प्रकृतियो के विपाक-फल का अनुभव पुद्गल और भव आदि द्वारा जैसा बध मे कहा है, उसी प्रकार उदीरणा मे भी समझना चाहिए। यानि कि उदीरणा से भी जीव पुद्गल और भव आदि के द्वारा उन-उन प्रकृतियो के फल को अनुभव करता है।

प्रत्ययप्ररूपणा

अब प्रत्ययो का निरूपण करते है—प्रत्यय, हेतु और कारण ये एकार्थक है। किस हेतु या कारण के माध्यम से उदीरणा होती है, उसको यहाँ बतलाते हैं। वीर्यव्यापार के बिना उदीरणा नही हो सकने से कषायसहित या कषायरहित योग सज्ञावाला वीर्य उसका मुख्य कारण है। इसका तात्पर्य यह हुआ—

किसी भी करण की प्रवृत्ति वीर्यव्यापार बिना नही हो सकती है। जिससे कषायसहित या कषायरहित जो वीर्यप्रवृत्ति, वही उदीरणा मे भी कारण है। अमुक-अमुक प्रकार का वीर्यव्यापार होने मे भी अनेक कारण होते है जैसे कि देव भव मे अमुक प्रकार का और नारक, तिर्यंच, मनुष्य भव मे अमुक प्रकार का वीर्य व्यापार होता है। देश या सर्व-

विरति आदि गुणस्थान वालो के अमुक प्रकार का और गुण विना के जीवो के अमुकप्रकार का वीर्यव्यापार होता है । वैक्रिय आहारक शरीर का परिणाम भी अमुक-अमुक प्रकृतियो की उदीरणा मे कारण है। जिसमे परिणाम का अर्थ जैसे अध्यवसाय होता है, उसी प्रकार यहाँ शरीर आदि का परिणाम ये अर्थ भी होता है तथा जैसा और जितना रस बँधता है, वैसा और उतना ही रस उदीरित होता है, ऐसा कुछ नही है। क्योकि कितनी ही प्रकृतियो का सर्वघाती और चतु स्थानक रस बँधता है, किन्तु वे सर्वघातिरस और चतु स्थानक रस से ही उदय मे आये ऐसा नही है। बध मे चाहे जैसा रस हो लेकिन उदय-उदीरणा मे अमुक प्रकार का ही रस होता है। यानि बँधे हुए रस का विपरिणाम कर, फेरफार कर, हानि-वृद्धि कर उदय मे लाता है। जिससे परिणाम का अर्थ 'अन्यथाभाव करना' ऐसा भी होता है। इस प्रकार वीर्यव्यापार होने मे भव आदि अनेक कारण होने से उदीरणा भी अनेक रीति से प्रवर्तित होती है। वीर्यव्यापार मुख्य कारण है, शेप सभी अवान्तर कारण हैं यह समझना चाहिए।

उदीरणा मे कारण रूप योग सज्ञा वाला वीर्यविशेप भवकृत और परिणामकृत के भेद से दो प्रकार है । उसमे देव, नारक आदि पर्याय को भव और अध्यवसाय या आहारक आदि शरीर का परिणाम और बाधे गये रस का अन्यथा भाव यह परिणाम जानना चाहिये।

परिणामकृत के भी दो प्रकार है—१ निर्गुण परिणामकृत २ सगुण परिणामकृत। यानि निर्गुण जीवो के परिणामो द्वारा किये गये और गुणवान जीवो के परिणाम द्वारा किये गये, इस तरह परिणामकृत-प्रत्यय दो प्रकार का है।

अब जिन प्रकृतियो की उदीरणा गुण-अगुण परिणामकृत या भव-कृत नही है, उनका निर्देश करते है—

उत्तरतणुपरिणामे अहिय अहोन्तावि होति सुसरजुया।
मिउलहु परघाउज्जोय खगइचउरसपत्तेया ॥५०॥

शब्दार्थ—**उत्तरतणुपरिणामे**—उत्तर शरीर का परिणाम होने पर, **अहिय**—अधिक-विशेष, **अहोन्तावि**—नही होने पर भी, **होंति**—होती ह, **सुसरजया**—सुस्वर सहित, **मिउलहु** मृदु, लघु **परघाउज्जोय**—पराघात, उद्योत, **खगइ**—(प्रशस्त) विहायोगति, **चउरस**—समचतुरस्रसस्थान, **पत्तेया**—प्रत्येक नाम ।

गाथार्थ—सुस्वर सहित मृदु, लघु, पराघात उद्योत (प्रशस्त) विहायोगति, समचतुरस्रसस्थान, प्रत्येक नाम रूप प्रकृतिया पहले अधिक—विशेष—आश्रयी न होने पर भी उत्तर शरीर का परिणाम हो तब अवश्य उदीरणा मे प्राप्त होती है ।

विशेषार्थ—सुस्वर सहित मृदु लघु, स्पर्श, पराघात, उद्योत, प्रशस्त-विहायोगति, समचतुरस्रसस्थान और प्रत्येक नाम रूप प्रकृतियाँ यद्यपि विशेष—आश्रयी पहले नही होती, तथापि जब उत्तरवैक्रिय या आहारक शरीर किया जाता है तब अवश्य उदीरणा मे प्राप्त होती है ।

तात्पर्य यह है कि अपने मूल शरीर मे अन्य वैक्रिय या आहारक शरीर करने से पहले उपर्युक्त प्रकृतियो की उदीरणा अवश्य हो, यह नही है, इनकी विरोधिनी प्रकृतियो की भी उदीरणा या उदय होता है। क्योकि चाहे किसी सस्थान या विहायोगति आदि के उदय वाला उत्तर शरीर कर सकता है, परन्तु जब उत्तर वैक्रिय या आहारक शरीर करे तब वह शरीर जब तक रहे तब तक उपर्युक्त प्रकृतियो की ही उदय पूर्वक उदीरणा होती है। यानि यहाँ गुण-अगुण का प्राधान्य नही है। परन्तु उत्तरशरीर का ही प्राधान्य है। इसीलिये उपर्युक्त प्रकृतियो की वैक्रिय या आहारक शरीर करे उस समय होने वाली उदीरणा गुणागुण-परिणामकृत या भवकृत नही है, परन्तु शरीरपरिणामकृत[1] है, यह समझना चाहिये । तथा—

---

१ गाथा मे शरीरपरिणामकृत भेद का सकेत नही है । लेकिन कर्मप्रकृति उदीरणाकरण गाथा ५१ मे शरीर का परिणाम उपर्युक्त प्रकृतियो की

सुभगाइ उच्चगोय गुणपरिणामा उ देसमाईण।
अइहीणफड्डगाओ अणतासो नोकसायाण ॥५१॥

शब्दार्थ—**सुभगाइ**—सुभगनाम आदि, **उच्चगोय**—उच्चगोत्र, **गुणपरिणामा उ**—गुणपरिणाम से ही, **देसमाईण**—देशविरति आदि के, **अइहीणफड्डगाओ**—अतिहीन स्पर्धक से, **अणतसो**—अनन्तवा भाग **नोकसायाण**—नोकषायो का।

गाथार्थ—देशविरति आदि के सुभगादि और उच्च गोत्र की उदीरणा गुणपरिणाम से होती है तथा इन्ही जीवो के नव नोकषायो का अतिहीन स्पर्धक से लेकर अनन्तवां भाग गुण परिणामकृत उदीरणायोग्य समझना चाहिए।

विशेषार्थ—देशविरति और प्रमत्तसयत आदि जीवो के सुभग आदि सुभग, आदेय और यश कीर्ति तथा उच्चगोत्र की अनुभाग-उदीरणा गुण परिणाम कृत-देश विरति आदि विशिष्ट गुण की प्राप्ति द्वारा हुए परिणामकृत है यह समझना चाहिए। जिसका स्पष्टीकरण इस प्रकार है—

कोई जीव सुभग आदि की प्रतिपक्षी दुर्भग आदि प्रकृतियो के उदय से युक्त होने पर भी जब देशविरति या सर्वविरति गुण को प्राप्त करता है, तब उस देशविरति आदि गुण के प्रभाव से उस गुणसम्पन्न जीव को सुभगादि प्रकृतियो की उदयपूर्वक उदीरणा प्रवर्तित होती है। यानि दुर्भगादि का उदय बदलकर सुभगादि का ही उदय होता है।

उदीरणा मे कारणभूत होने से परिणामकृत उदीरणा मे उनका समावेश किया है। उसमे आहारकशरीर का परिणाम गुणवान आत्माओ को ही होने से उसकी उदीरणा का समावेश गुणपरिणामकृत मे और वैक्रिय शरीर का परिणाम गुणी, निर्गुणी दोनो के होने से उसकी उदीरणा का समावेश सगुण-निर्गुण परिणामकृत दोनो मे हो सकता है, इसीलिए यहाँ परिणाम का शरीर परिणाम भी अर्थ किया है।

स्त्रीवेद आदि नव नोकषायो का अति जघन्य अनुभागस्पर्धक से लेकर अनुक्रम से (कुल स्पर्धक का) अनन्तवाँ भाग[1] देशविरति-सर्वविरत जीवो को गुणपरिणामकृत उदीरणायोग्य समझना चाहिए।[2] तथा—

जा जमि भवे नियमा उदीरए ताउ भवनिमित्ताओ।
परिणामपच्चयाओ सेसाओ सइ स सव्वत्थ ॥५२॥

शब्दार्थ—**जा जमि भवे**—जिन प्रकृतियो की जिस भव मे, **नियमा**—नियम से, **उदीरए**—उदीरणा होती है, **ताउ**—वे, **भवनिमित्ताओ**—भव निमित्तक, **परिणामपच्चयाओ**—परिणाम प्रत्ययिक, **सेसाओ**—शेष, **सइ**—होती है, **स**—वह, **सव्वत्थ**—सर्वत्र।

गाथार्थ—जिन प्रकृतियो की जिस भव मे अवश्य उदीरणा होती है, वे भवनिमित्तक और शेष परिणामप्रत्ययिक कहलाती है। क्योकि उनकी उदीरणा सर्वत्र होती है।

विशेषार्थ—जिन-जिन कर्म प्रकृतियो की जिस-जिस भव मे अवश्य उदीरणा होती है, वे प्रकृतिया उस-उस भव के कारण होने से तद्भव प्रत्ययिक कहलाती है। अर्थात् उन उन प्रकृतियो की उदीरणा मे वह-वह भव कारण है। जैसे कि नरकत्रिक की उदीरणा नारकभवनिमि-

---

१ जघन्य स्पर्धक से लेकर समस्त स्पर्धको का अनन्तवाँ भाग वेद आदि प्रकृतियो का देशविरत आदि जीवो के उदीरणायोग्य कहा है। यानि जघन्य रसस्पर्धक से लेकर अनन्त स्पर्धक द्वारा जैसा परिणाम हो वैसा वेदादि का उदय देशविरतादि को समझना चाहिये। क्योकि गुण के प्रभाव से उस-उस पापप्रकृति का उदय मन्द-मन्द होने से यह सम्भव है।

२ कर्मप्रकृति उदीरणाकरण गाथा ५२ मे इन प्रकृतियो का असख्यातवाँ भाग गुणपरिणामकृत उदीरणायोग्य बताया है।

त्तक होती है, देवत्रिक की उदीरणा मे देवभव कारण है, तिर्यंचत्रिक, एकेन्द्रिय, विकलेन्द्रियजातित्रिक, स्थावर, सूक्ष्म, साधारण और आतप नामकर्म की उदीरणा तिर्यंचभव प्रत्यधिक है और मनुष्यत्रिक की उदीरणा मे मनुष्यभव हेतु है।

उक्त बीस प्रकृतियो की उदीरणा उस-उस भव मे ही होने से भव-प्रत्ययिक कहलाती है।

शेप प्रकृतियो की उदीरणा मे कोई निश्चित भव प्रतिबधक नही होने से परिणामप्रत्ययिक कहलाती है। जिसका आशय यह है कि उक्त बीस प्रकृतियो के सिवाय शेष प्रकृतियो की उदीरणा परिणाम-प्रत्ययिक और ध्रुव है। क्योकि सर्वभावो मे और सर्वभवो मे विद्यमान उदीरणा ध्रुवोदया प्रकृतियो की होती है। इसलिए परिणाम-निर्मित्त से जिनकी उदीरणा होने वाली है, ऐसी शेष प्रकृतिया ध्रुवोदया ही समझना चाहिए और उनकी उदीरणा निर्गुणपरिणामकृत समझना चाहिए। तथा—

तित्थयर घाईणि य आसज्ज गुण पहाणभावेण।
भवपच्चइया सव्वा तहेव परिणामपच्चइया ॥५३॥

शब्दार्थ—तित्थयर—तीर्थंकर, घाईणि—घाति प्रकृतिया, य—और, आसज्ज—आधार से, गुण - गुण के, पहाणभावेण—प्रधानतया, मुख्यरूप से, भवपच्चइया—भवप्रत्ययिक, सव्वा—सभी, तहेव —उसी तरह, परिणामपच्च-इया—परिणाम प्रत्ययिक।

गाथार्थ—तीर्थंकर और घाति प्रकृतिया गुण के आधार से प्रधानतया गुणपरिणामप्रत्ययिक जानना चाहिए अथवा उसी तरह सभी प्रकृतिया भवप्रत्ययिक एव परिणामप्रत्ययिक भी कहलाती है।

विशेषार्थ—तीर्थंकरनाम, घाति प्रकृति, ज्ञानावरणपचक, दर्शना-वरणनवक, नोकषाय बिना शेष मोहनीय और अन्तरायपचक तथा

च शब्द से सकलित वैक्रियसप्तक तथा ध्रुवोदया प्रकृतिया अन्यथा बधी हुई ये सभी प्रकृतिया गुण के अवलम्बन मे अन्यथा परिणमित होकर[1] उदीरित होती है। इसलिए उनकी उदीरणा मुख्यरूप मे गुण-परिणामकृत समझना चाहिये। अथवा सभी प्रकृतिया यथायोग्य रीति से किसी न किसी भव मे उदीरित की जाती है। जैसे तिर्यंचगति-प्रायोग्य तिर्यंचगति मे, मनुष्यगतिप्रायोग्य मनुष्यगति मे, नरकगति-प्रायोग्य नरकगति मे और देवगतिप्रायोग्य देवभव मे। इसलिए सभी प्रकृतियो की उदीरणा भवप्रत्ययिक जानना चाहिए। अथवा उस-उस प्रकार के परिणाम के वश से अधिक रस वाली प्रकृतियो को अल्प रस वाली करके और अल्प रस वाली हो तो उन्हे अधिक रस वाली करके सभी जीव उदीरित करते हैं। इसीलिये सभी प्रकृतियो परिणाम प्रत्यरिक जानना चाहिए।

इस प्रकार से प्रत्ययप्ररूपणा का आशय जानना चाहिए। अब साद्यादि प्ररूपणा करने का अवसर प्राप्त है। वह मूलप्रकृतिविषयक और उत्तरप्रकृतिविपयक के भेद से दो प्रकार की है। उसमे पहले मूल-प्रकृतिविषयक साद्यादि प्ररूपणा करते है।

मूलप्रकृति-सम्बन्धी साद्यादि प्ररूपणा

वेयणिएणुक्कोसा अजहण्णा मोहणीय चउभेया।
सेसघाईणं तिविहा नामगोयाणणुक्कोसा ॥५४॥
सेसविगप्पा दुविहा सव्वे आउस्स होउमुवसन्तो।
सव्वट्ठगओ साए उक्कोसुद्दीरण कुणइ ॥५५॥

शब्दार्थ—वेयणिएणुक्कोसा—वेदनीय कर्म की अनुत्कृष्ट उदीरणा,

---

१ यहाँ अन्य प्रकृति मे सक्रमरूप अन्यथा परिणाम नही समझना चाहिये। किन्तु रस की उदीरणा का अधिकार होने से जिस प्रकृति मे जैसा रस बाधा हो, उसमे फेरफार करने रूप अन्यथा परिणमन जानना चाहिए।

अजहण्णा—अजघन्य, **मोहणीय**—मोहनीय की, **चउभेया**—चार प्रकार की है। **सेसघाईण**—शेष घाति प्रकृतियो की, **तिविहा**—तीन प्रकार की, **नामगोयाणुक्कोसा**—नाम और गोत्र की अनुत्कृष्ट।

सेसविगप्पा—शेष विकल्प, **दुविहा**—दो प्रकार के, **सव्वे**—सभी, **आउस्स**—आयुकर्म के, **होउ**—होकर, **उवसन्तो**—उपशात, **सव्वट्ठगओ**—सर्वार्थसिद्ध मे गया हुआ, **साए**—सातावेदनीय की, **उक्कोसुद्दीरण**—उत्कृष्ट उदीरण, **कुणइ**—करता है।

गाथार्थ—वेदनीयकर्म की अनुत्कृष्ट और मोहनीय की अजघन्य उदीरणा चार प्रकार की है। शेष घाति कर्मो की तीन प्रकार की है। नाम और गोत्र कर्म की अनुत्कृष्ट उदीरणा भी तीन प्रकार की है।

उक्त से शेष विकल्प दो प्रकार के है। आयुकर्म के सभी विकल्प दो प्रकार के है। उपशात होकर सर्वार्थसिद्ध मे गया जीव सातावेदनीय की उत्कृष्ट उदीरणा करता है।

विशेषार्थ—इन दो गाथाओ मे मूल कर्म प्रकृतियो की सादि आदि प्ररूपणा की है और उसका प्रारम्भ किया है वेदनीय कर्म से—

वेदनीय कर्म की अनुत्कृष्ट अनुभाग-उदीरणा सादि, अनादि, ध्रुव और अध्रुव इस तरह चार प्रकार की है। वह इस तरह—

उपशमश्रेणि मे सूक्ष्मसपरायगुणस्थान मे यथायोग्य रूप से उत्कृष्ट रस वाला साता वेदनीय का बध करे और वहाँ से कालधर्म प्राप्त कर सर्वार्थसिद्ध महाविमान मे उत्पन्न हो, तब पहले समय मे उसको जो उदीरणा होती है, वह उत्कृष्ट अनुभाग-उदीरणा है और वह नियत कालपर्यन्त ही होने से सादि-सात है। उसके सिवाय अन्य सभी अनुत्कृष्ट उदीरणा है। वह अप्रमत्तसंयत आदि गुणस्थानो में नही होती है, किन्तु वहाँ से पतन हो तब होती है। इसीलिये सादि है, उस स्थान को जिसने प्राप्त नही किया उसकी अपेक्षा अनादि, अभव्य के ध्रुव और भव्य के अध्रुव उदीरणा है।

मोहनीय की अजघन्य अनुभाग-उदीरणा सादि, अनादि, ध्रुव और अध्रुव इस तरह चार प्रकार की है। वह इस प्रकार—मोहनीय-कर्म की जघन्य अनुभाग-उदीरणा क्षपकश्रेणि मे सूक्ष्मसपरायगुण-स्थानवर्ती जीव के समयाधिक आवलिका शेष स्थिति रहे तब होती है और उसको एक समय पर्यन्त ही होने से सादि-सात है। शेष काल मे अजघन्य अनुभाग-उदीरणा प्रवर्तित होती है। वह उपशातमोहगुण-स्थान मे नही होती है, किन्तु वहाँ से गिरने पर होती है, इसलिये सादि है। उस स्थान को प्राप्त नही करने वाले के अनादि, अभव्य के ध्रुव और भव्य के अध्रुव है।

शेष ज्ञानावरण, दर्शनावरण और अतराय कर्म रूप घाति कर्मो की अजघन्य अनुभाग-उदीरणा अनादि, ध्रुव और अध्रुव इस तरह तीन प्रकार की है। वह इस प्रकार—इन कर्मप्रकृतियो की क्षीणमोहगुण-स्थान मे समयाधिक आवलिका शेष रहे तब जघन्य अनुभाग-उदीरणा होती है और वह एक समय-पर्यन्त होने से सादि-सात है। उसके सिवाय अन्य सभी अजघन्य अनुभाग-उदीरणा है। उसे अनादि काल से प्रवर्तित होने से अनादि है तथा अभव्य के ध्रुव और भव्य के अध्रुव जानना चाहिये।

नाम और गोत्र कर्म की अनुत्कृष्ट अनुभाग-उदीरणा अनादि, ध्रुव और अध्रुव इस तरह तीन प्रकार की है। वह इस प्रकार—इन दोनो कर्मो की उत्कृष्ट अनुभाग-उदीरणा सयोगिकेवलीगुणस्थान मे होती है और वह नियत काल पर्यन्त प्रवर्तित होने से सादि सात है। उसके अतिरिक्त अन्य सभी अनादि है। इस गुणस्थान को प्राप्त होने से पूर्व अनादिकाल मे होती रहने से अनुत्कृष्ट अनुभाग-उदीरणा अनादि है। अभव्य के ध्रुव और भव्य जब चौदहवा गुणस्थान प्राप्त करेगा तब अनुत्कृष्ट उदीरणा का अन्त करेगा, अतएव उसकी अपेक्षा अध्रुव-सात है।

जिस जिस कर्म से सम्बन्धित जो-जो विकल्प कहे है, उनके सिवाय

शब्दार्थ—कक्खडगुरुमिच्छाण—कर्कश, गुरु स्पर्श और मिथ्यात्व की, अजहण्णा—अजघन्य, मिउलहुणणुक्कोसा—मृदु, लघु स्पर्श की अनुत्कृष्ट, चउहा—चार प्रकार की, साइयवज्जा—सादि को छोडकर, बीसाए—बीस, धुवोदयसुभाण—ध्रुवोदया शुभ प्रकृतियो की ।

गाथार्थ—कर्कश, गुरु स्पर्श और मिथ्यात्व की अजघन्य तथा मृदु, लघु स्पर्श की अनुत्कृष्ट अनुभाग-उदीरणा चार प्रकार की है तथा शुभ ध्रुवोदया बीस प्रकृतियो की अनुत्कृष्ट अनुभाग-उदीरणा सादि को छोडकर तीन प्रकार की है ।

विशेषार्थ—कर्कश, गुरु स्पर्श और मिथ्यात्वमोहनीय की अजघन्य अनुभाग-उदीरणा सादि, अनादि, ध्रुव और अध्रुव इस तरह चार प्रकार की है । वह इस प्रकार—सम्यक्त्व और सयम एक साथ—एक ही समय मे प्राप्त करने के इच्छुक—उन्मुख किसी मिथ्यादृष्टि जीव के उत्कृष्ट विशुद्धि के कारण मिथ्यात्वमोहनीय की जघन्य अनुभाग-उदीरणा होती है । नियत काल पर्यन्त होने से वह सादि-सात है । उसके सिवाय अन्य मिथ्यादृष्टि से उसकी अजघन्य अनुभाग-उदीरणा होती है । सम्यक्त्व से गिरते अजघन्य अनुभाग-उदीरणा प्रारम्भ होती है, अतएव सादि, उस स्थान को प्राप्त नही करने वाले के अनादि, अभव्य को ध्रुव और भव्य के अध्रुव है ।

कर्कश और गुरु स्पर्श की जघन्य अनुभाग-उदीरणा केवलिसमुद्घात से निवृत्त होते केवलि के छठे समय मे जीवस्वभाव से होती है । समय मात्र प्रमाण होने से वह सादि सात है । उसके सिवाय अन्य समस्त अजघन्य है और वह केवलिसमुद्घात से निवृत्त होते सातवे समय मे होती है, इसलिये सादि है । उस स्थान को प्राप्त नही करने वाले की अपेक्षा अनादि, अभव्य के ध्रुव तथा भव्य की अपेक्षा अध्रुव है । तथा—

मृदु, लघु स्पर्श की अनुत्कृष्ट अनुभाग-उदीरणा सादि, अनादि, ध्रुव और अध्रुव इस तरह चार प्रकार की है । वह इस प्रकार—इन

प्रकृतियो के उत्कृष्ट अनुभाग की उदीरणा आहारक शरीरस्थ सयत के होती है। जो अन्तर्मुहूर्त पर्यन्त ही प्रवर्तित होने से सादि सात है। उसके अतिरिक्त शेप सव अनुभाग उदीरणा अनुत्कृष्ट है और वह आहारकशरीर का उपसहार होते समय होती है, अत सादि है। उस स्थान को जिसने प्राप्त नही किया उसकी अपेक्षा अनादि, अभव्य के ध्रुव तथा भव्य के अध्रुव है।

तैजस्सप्तक, स्थिर, शुभ, निर्माण, अगुरुलघु, श्वेत, पीत, रक्त वर्ण, सुरभिगध, मधुर, आम्ल, कषाय रस, उष्ण, स्निग्ध स्पर्श रूप शुभ ध्रुवोदया बीस प्रकृतियो की उत्कृष्ट अनुभाग-उदीरणा अनादि, ध्रुव और अध्रुव इस तरह तीन प्रकार की है और वह इस प्रकार—इन प्रकृतियो के उत्कृष्ट रस की उदीरणा सयोगिकेवली के चरम समय मे होती है, जिससे वह सादि-सात है। उसके सिवाय अन्य शेष सब अनुत्कृष्ट है। उसके सर्वदा होते रहने से अनादि, अभव्य के ध्रुव और भव्य के अध्रुव है। तथा—

अजहण्णा असुभधुवोदयाण तिविहा भवे तिवीसाए।
साईअधुवा सेसा सव्वे अधुवोदयाण तु ॥५७॥

शब्दार्थ—अजहण्णा—अजघन्य, असुभधुवोदयाण—अशुभ ध्रुवोदया प्रकृतियो की, तिविहा—तीन पकार की, भवे—होती है, तिवीसाए—तेईस, साइअधुवा—मादि और अध्रुव, सेसा—शेप की, सव्वे—मव, अधुवोदयाण—अध्रुवोदया प्रकृतियो की, तु—और।

गाथार्थ—अशुभ ध्रुवोदया तेईस प्रकृतियो की अजघन्य अनुभाग-उदीरणा तीन प्रकार की है। शेष विकल्प तथा अध्रुवोदया प्रकृतियो के समस्त विकल्प सादि अध्रुव है।

विशेषार्थ—ज्ञानावरणपचक, दर्शनावरणचतुष्क, कृष्ण, नील वर्ण, दुरभिगध, तिक्त, कटुक रस, रूक्ष, शीत स्पर्श, अस्थिर, अशुभ और अत-

रायपचक रूप अशुभ ध्रुवोदया तेईस प्रकृतियो की अजघन्य अनुभाग-उदीरणा अनादि, ध्रुव और अध्रुव इस तरह तीन प्रकार की है। जिसका स्पष्टीकरण इस प्रकार है—

उपर्युक्त प्रकृतियो के जघन्य अनुभाग की उदीरणा उन-उन प्रकृतियो के उदीरणा-विच्छेद स्थान मे होती है और वह सादि—अध्रुव है। उसके सिवाय शेष अन्य सब अजघन्य है और उसके सर्वदा प्रवर्तित होते रहने से वह अनादि, अभव्य के ध्रुव तथा भव्य के अध्रुव होती है।

उपर्युक्त सभी प्रकृतियो के उक्त मे शेष विकल्प सादि-अध्रुव है। किस प्रकृति के कौन विकल्प उक्त से शेष हैं ? तो वह इस प्रकार जानना चाहिए—कर्कश, गुरु, मिथ्यात्व और अशुभ ध्रुवोदया तेईस प्रकृतियो के उत्कृष्ट, अनुत्कृष्ट और जघन्य ये तीन विकल्प तथा मृदु, लघु और शुभ ध्रुवोदया बीस प्रकृतियो के जघन्य, अजघन्य और उत्कृष्ट ये तीन विकल्प शेष है। जिनमे सादि—अध्रुव भगो का विचार इस प्रकार है—

कर्कश, गुरु, मिथ्यात्व और अशुभ ध्रुवोदया तेईस प्रकृतियो के उत्कृष्ट-अनुत्कृष्ट अनुभाग की उदीरणा मिथ्यादृष्टियो के एक के बाद दूसरी इस प्रकार के परावर्तमान क्रम से होती है। क्योकि ये सभी पाप प्रकृतिया है और उनका उत्कृष्ट अनुभागबध मिथ्यादृष्टियो के होता है। अतएव ये दोनो भग सादि-अध्रुव सात है। जघन्य का विचार अजघन्य भग के प्रसग मे किया जा चुका है तथा मृदु, लघु स्पर्श एव ध्रुवोदया बीस प्रकृतियो के जघन्य-अजघन्य अनुभाग की उदीरणा मिथ्यात्वियो के एक के बाद एक के क्रम से होती है। क्योकि ये पुण्य प्रकृतिया है और क्लिष्ट परिणाम के योग से उनका जघन्य रसबध होता है। अत वे दोनो सादि-सात हैं। अनुत्कृष्ट के प्रसग मे उत्कृष्ट अनुभाग उदीरणा का विचार किया जा चुका है।

शेष अध्रुवोदया एक सौ दस प्रकृतियो के उत्कृष्ट, अनुत्कृष्ट, जघन्य और अजघन्य ये सभी विकल्प उन प्रकृतियो के अध्रुवोदया होने से सादि-सात है। उदय हो तब उत्कृष्ट आदि कोई भी उदीरणा होती है और उदय के निवृत्त होने पर नही होती है।

इस प्रकार से मूल और उत्तर प्रकृतियो की साद्यादि प्ररूपणा जानना चाहिये। अब क्रमप्राप्त स्वामित्व प्ररूपणा करते है। वह उत्कृष्ट उदीरणास्वामित्व और जघन्य उदीरणास्वामित्व के भेद से दो प्रकार की है। उसमे से प्रथम उत्कृष्ट उदीरणास्वामित्व का निर्देश करते है।

उत्कृष्ट अनुभाग-उदीरणास्वामित्व

दाणाइअचक्खूण उक्कोसाइंमि हीणलद्धिस्स।
सुहुमस्स चक्खुणो पुण तेइंदिय सव्वपज्जत्ते ॥५८॥

शब्दार्थ—दाणाइ—दान आदि अन्तरायपचक, अचक्खूण—अचक्षुदर्शनावरण की, उक्कोसाइमि—उत्कृष्ट अनुभाग-उदीरणा भव के आदि मे, हीणलद्धिस्स—हीन लब्धि वाले, सुहुमस्स—सूक्ष्म एकेन्द्रिय के, चक्खुणो—चक्षुदर्शनावरण की, पुण—पुन और, तेइंदिय—त्रीन्द्रिय के, सव्वपज्जत्ते—सर्वपर्याप्तियो से पर्याप्त।

गाथार्थ—दानादि अन्तरायपचक और अचक्षुदर्शनावरण के उत्कृष्ट अनुभाग की उदीरणा हीन लब्धि वाले सूक्ष्म एकेन्द्रिय को भव के आदि समय मे तथा चक्षुदर्शनावरण की (स्वयोग्य) सर्व पर्याप्तियो से पर्याप्त त्रीन्द्रिय के होती है।

विशेषार्थ—दानान्तराय आदि पाच अन्तराय और अचक्षुदर्शनावरण इन छह प्रकृतियो के उत्कृष्ट अनुभाग की उदीरणा अत्यन्त अल्प दानादि लब्धि वाले और चक्षु के सिवाय शेष इन्द्रियो के विज्ञान की अत्यन्त अल्प लब्धि वाले सूक्ष्म एकेन्द्रिय को उत्पत्ति के प्रथम समय मे होती है।

इसका कारण यह मालूम होता है कि शुरुआत मे वे दानादि गुण अत्यन्त आवृत होते है और कर्मो का उदय तीव्र प्रमाण मे होता है जिसमे उदीरणा भी उत्कृष्ट होती है। इन प्रकृतियो का प्रत्येक जीव को क्षयोपशम होता है और वह भी भव के प्रथम समय से जैसे-जैसे आगे बढता जाता है, वैसे-वैसे अधिक-अधिक होता है और जैसे जैसे योग बढता जाता है, वैसे-वैसे क्षयोपशम भी बढता है तथा उससे उदीरणा का प्राबल्य घटता जाता है। तथा—

समस्त पर्याप्तियो से पर्याप्त त्रीन्द्रिय जीव के पर्याप्ति के चरम समय मे चक्षुदर्शनावरणकर्म के उत्कृष्ट अनुभाग की उदीरणा होती है। इसीलिए त्रीन्द्रिय जीव चक्षुदर्शनावरण के उत्कृष्ट अनुभाग की उदीरणा का स्वामी है। इसका कारण यह है प्रत्येक अपर्याप्त अपर्याप्तावस्था मे उत्तरोत्तर समय मे असख्यातगुण योग वृद्धि से बढता है। अपर्याप्तावस्था के अन्तिम समय मे योग अधिक होने से अधिक अनुभाग की उदीरणा हो सकती है। एकेन्द्रियादि को इतना योग नही होने से उनको अधिक अनुभाग की उदीरणा नही होती है, इसीलिये उनका ग्रहण नही किया है और चतुरिन्द्रियादि के तो चक्षुरिन्द्रियावरण का क्षयोपशम ही होता है। तथा—

निद्दाण पंचण्हवि मज्झिमपरिणामसकिलिट्ठस्स ।
पणनोकसायसाए नरए जेट्ठट्ठिति समत्तो ॥५६॥

शब्दार्थ—**निद्दाण पचण्हवि**—पाचो निद्राओ की, **मज्झिमपरिणामसकिलिट्ठस्स**—मध्यम परिणामी सक्लिष्ट जीव के, **पणनोकसायसाए**—पाच नोकषायो और असातावेदनीय की, **नरए**—नारक के, **जेट्ठट्ठिति**—उत्कृष्ट स्थिति वाले, **समत्तो**—पर्याप्त को।

गाथार्थ—मध्यमपरिणामी तत्प्रायोग्य सक्लिष्ट जीव के पांचो निद्राओ की तथा उत्कृष्ट स्थिति वाले पर्याप्त नारक के

पाच नोकषाय और असातावेदनीय की उत्कृष्ट अनुभाग-उदीरणा होती है।

विशेषार्थ—समस्त पर्याप्तिया से पर्याप्त मध्यमपरिणाम वाले एव तत्प्रायोग्य सक्लेशयुक्त जीव के निद्रा आदि पाँचो निद्राओ की उत्कृष्ट अनुभाग-उदीरणा होती है। क्योकि अत्यन्त विशुद्ध और अत्यन्त सक्लिष्ट परिणाम वाले के किसी भी निद्रा का उदय ही नही होता है, इसीलिये मध्यमपरिणाम वाले का ग्रहण किया है और अपर्याप्तावस्था मे भी तीव्र निद्रा का उदय नही होने से पर्याप्तावस्था ग्रहण की है। तथा—

नपुंसकवेद, अरति, शोक, भय, जुगुप्सा इन पाच नोकषायो और असातावेदनीय की उत्कृष्ट अनुभाग उदीरणा का स्वामी उत्कृष्ट आयु वाला और समस्त पर्याप्तियो मे पर्याप्त नारक जानना चाहिए। उत्कृष्ट आयु वाले सातवें नरक के पर्याप्त नारक के इन पाँच प्रकृतियो के उत्कृष्ट रस की उदीरणा सम्भव है। क्योकि अत्यन्त पाप करने पर सातवी नरक पृथ्वी प्राप्त होती है तथा अपर्याप्त से पर्याप्तावस्था मे योग अधिक होने से पर्याप्त का ग्रहण किया है। तथा—

पंचेन्द्रियतसबायरपज्जत्तगसायसुस्सरगईण।
वेउव्वुस्सासस्स य देवो जेट्ठट्ठिति समत्तो ॥६०॥

शब्दार्थ—पचेन्दिय—पचेन्द्रियजाति, तसबायरपज्जत्तग—त्रस, बादर, पर्याप्त सायसुस्सरगईण—सातावेदनीय, सुस्वर, देवगति की, वेउव्वुस्सासस्स—वैक्रिय (सप्तक), उच्छ्‌वासनाम की, य—और, देवो—देव, जेट्ठट्ठिति—उत्कृष्ट स्थिति वाला, समत्तो—सम्पूर्ण पर्याप्ति वाला—पर्याप्त।

गाथार्थ—पचेन्द्रियजाति, त्रस, बादर, पर्याप्त, सातावेदनीय, सुस्वर, देवगति, वैक्रियसप्तक और उच्छ्‌वासनाम की उत्कृष्ट स्थिति वाला पर्याप्त देव उत्कृष्ट अनुभाग-उदीरणा का स्वामी है।

विशेषार्थ—पचेन्द्रियजाति, त्रस, बादर, पर्याप्त, सातावेदनीय[1] सुस्वरनाम, देवगति, वैक्रियसप्तक और उच्छ्‌वासनाम इन पन्द्रह प्रकृतियो के उत्कृष्ट अनुभाग की उदीरणा समस्त पर्याप्तियो से पर्याप्त, उत्कृष्टस्थिति वाला (तेतीस सागरोपम की आयु वाला) और सर्व विशुद्ध परिणामी देव करता है। क्योकि ये सभी पुण्यप्रकृतिया है, जिससे उनके उत्कृष्ट अनुभाग की उदीरणा पुण्य के तीव्र प्रकर्ष वाला अनुत्तरवासी देव ही करता है। तथा—

सम्मत्तमीसगाण से काले गहिहिइत्ति मिच्छत्त ।
हासरईण पज्जत्तगस्स सहसारदेवस्स ॥६१॥

शब्दार्थ—**सम्मत्तमीसगाण**—सम्यक्त्व और मिश्र मोहनीय की, **से काले**—तत्काल बाद के समय मे, **गहिहिइत्ति**—प्राप्त करेगा, **मिच्छत्त**—मिथ्यात्व को, **हासरईण**—हास्य और रति की, **पज्जत्तगस्स**—पर्याप्त के, **सहसारदेवस्स**—सहस्रार कल्प के देव के।

गाथार्थ—जो जीव बाद के समय मे मिथ्यात्व प्राप्त करेगा, उसे सम्यक्त्व और मिश्रमोहनीय की तथा पर्याप्त सहस्रारकल्प के देव के हास्य और रति की उत्कृष्ट अनुभाग-उदीरणा होती है।

विशेषार्थ—तत्काल—बाद के समय मे ही मिथ्यात्व प्राप्त करने वाले सर्वसक्लिष्टपरिणामी सम्यक्त्वमोहनीय के उदय वाले को सम्यक्त्वमोहनीय की और मिश्रमोहनीय के उदय वाले को मिश्रमोहनीय के उत्कृष्ट अनुभाग की उदीरणा होती है। इसका कारण यह है कि मिथ्यात्व को प्राप्त करने वाला जीव तीव्र सक्लेश वाला होता है,

---

१ उत्कृष्ट-अनुत्कृष्ट आदि भगो के प्रसग मे सातावेदनीय के उत्कृष्ट अनुभाग की उदीरणा सर्वार्थसिद्ध महाविमान मे उत्पन्न हो, तब प्रथम समय मे कही है और यहा पर्याप्त अवस्था मे बताई है। विद्वान स्पष्ट करने की कृपा करें।

जिससे सम्यक्त्व और मिश्र मोहनीय के उत्कृष्ट अनुभाग की उदीरणा के बाद जिस समय में मिथ्यात्व में जाये, उस समय संभव है तथा समस्त पर्याप्तियों से पर्याप्त सहस्रारदेव के हास्य, रति की उत्कृष्ट अनुभाग-उदीरणा होती है। तथा—

गइहुण्डुवघायाणिट्ठखगतिदुसगाइणीयगोयाण ।
नेरइओ जेट्ठट्ठिइ मणुओ अंते अपज्जस्स ॥६२॥

शब्दार्थ—गइ—(नरक) गति, हुंडुवघायाणिट्ठखगति—हुंडसंस्थान, उपघात, अप्रशस्तविहायोगति दुसगाइ—दुःस्वर आदि, णीयगोयाण—नीचगोत्र के, नेरइओ—नारक, जेट्ठट्ठिइ—उत्कृष्ट स्थिति वाला, मणुओ—मनुष्य, अंते—अंत में, अपज्जस्स—अपर्याप्त नाम की।

गाथार्थ—नरकगति, हुण्डसंस्थान, उपघात, अप्रशस्तविहायोगति, दुःस्वरादि और नीचगोत्र के उत्कृष्ट अनुभाग का उदीरक उत्कृष्ट स्थिति वाला नारक है तथा अपर्याप्त नाम के उत्कृष्ट अनुभाग की उदीरणा अंत में मनुष्य करता है।

विशेषार्थ—नरकगति, हुण्डसंस्थान, उपघात नाम, अप्रशस्तविहायोगति, दुर्भग, दुःस्वर, अनादेय, अयशःकीर्तिनाम और नीचगोत्र इन नौ प्रकृतियों के उत्कृष्ट अनुभाग की उदीरणा उत्कृष्ट आयु वाला और समस्त पर्याप्तियों से पर्याप्त अति संक्लिष्ट परिणामी नारक करता है। क्योंकि ये सभी पापप्रकृतियां हैं, जिससे इनके उत्कृष्ट अनुभाग की उदीरणा के योग्य अति संक्लिष्टपरिणामी सातवीं नरकपृथ्वी का नारक जीव ही सम्भव है। उसके ही ऐसा तीव्र संक्लेश हो सकता है कि जिसके कारण उक्त प्रकृतियों की उत्कृष्ट अनुभाग-उदीरणा हो।

अपर्याप्तनाम के उत्कृष्ट अनुभाग की उदीरणा का स्वामी अपर्याप्तावस्था के चरम समय में वर्तमान अपर्याप्त मनुष्य है। तथा—

कक्खडगुरुसघयणा थीपुमसंट्ठाणतिरिगईणं च ।
पचिंदिओ तिरिक्खो अट्ठमवासेट्ठवासाऊ ॥६३॥

शब्दार्थ—कक्खडगुरुसघयणा—कर्कश, गुरु स्पर्श, पाच सहनन, थीपुमसंट्ठाणतिरिगईण—स्त्रीवेद, पुरुषवेद, (चार) सस्थान, तिर्यंचगति के, च—और, पचिंदिओ—पचेन्द्रिय, तिरिक्खो—तिर्यंच अट्ठमवासेट्ठवासाऊ—आठवें वर्ष मे वर्तमान और आठ वर्ष की आयु वाला ।

गाथार्थ—कर्कश, गुरु स्पर्श, पाच सहनन, स्त्रीवेद, पुरुषवेद, चार सस्थान और तिर्यंचगतिनाम के उत्कृष्ट अनुभाग की उदीरणा का स्वामी आठवे वर्ष मे वर्तमान आठ वर्ष की आयु वाला तिर्यंच है ।

विशेषार्थ—कर्कश और गुरु स्पर्श, पहले के सिवाय शेष पाच सहनन, स्त्री और पुरुषवेद, आदि और अत को छोडकर शेष मध्य के चार सस्थान एव तिर्यंचगतिनाम, इन चौदह प्रकृतियो के उत्कृष्ट अनुभाग की उदीरणा का स्वामी आठ वर्ष की आयु वाला और आठवें वर्ष मे वर्तमान सज्ञी पचेन्द्रिय तिर्यंच है । तथा—

तिगपलियाउ समत्तो मणुओ मणुयगतिउसभउरलाण ।
पज्जत्ता चउगइया उक्कोस सगाउयाण तु ॥६४॥

शब्दार्थ—तिगपलियाउ—तीन पल्योपम की आयु वाला, समत्तो—पर्याप्त, मणुओ—मनुष्य, मणुयगतिउसभउरलाण—मनुष्यगति, वज्रऋषभनाराचसहनन, औदारिकसप्तक के, पज्जत्ता—पर्याप्त, चउगइया—चतुर्गति के जीव, उक्कोस—उत्कृष्ट, सगाउयाण—अपनी आयु की, तु—और ।

गाथार्थ—तीन पल्योपम की आयु वाला पर्याप्त मनुष्य मनुष्यगति, वज्रऋषभनाराचसहनन, औदारिकसप्तक के उत्कृष्ट अनुभाग की उदीरणा का स्वामी है तथा चारो गति के पर्याप्त अपनी-अपनी आयु की उत्कृष्ट अनुभाग-उदीरणा करते हैं ।

उत्तरवेउव्विजई उज्जोयस्सायवस्स खरपुढवी ।
नियगगईण भणिया तइये समएणुपुव्वीण ॥६७॥

शब्दार्थ—**उत्तरवेउव्विजई**—उत्तरवैक्रिय यति, **उज्जोयस्स**—उद्योत नाम का, **आयवस्स**—आतपनाम का, **खरपुढवी**—खर पृथ्वीकायिक, **नियगईण**—अपनी-अपनी गति के, **भणिया**—कहे हैं, **तइये**—तीसरे, **समए**—समय में, **णुपुव्वीणं**—आनुपूर्वी के ।

गाथार्थ—उत्तरवैक्रिययति उद्योत नाम की, खर पृथ्वीकायिक आतप नाम की और अपनी-अपनी गति के जो उदीरक कहे हैं, वे ही भव के तीसरे समय मे वर्तमान जीव आनुपूर्वीनाम की उत्कृष्ट अनुभाग-उदीरणा के स्वामी है ।

विशेषार्थ—वैक्रियशरीर की समस्त पर्याप्तियो मे पर्याप्त सर्व विशुद्ध परिणाम वाला वैक्रियशरीरधारी यति उद्योतनामकर्म के उत्कृष्ट अनुभाग की उदीरणा का स्वामी है[1] तथा सर्व विशुद्ध परिणामी, समस्त पर्याप्तियो से पर्याप्त और उत्कृष्ट आयु वाला खर बादर पृथ्वीकायिक जीव आतपनामकर्म के उत्कृष्ट अनुभाग की उदीरणा का स्वामी है[2] तथा जिस-जिस गति के जो-जो जीव उदीरक कहे

---

१ यद्यपि आहारकशरीरी को भी उद्योत का उदय होता है तथा वैक्रिय से आहारकशरीर अधिक तेजस्वी होता है, लेकिन उसके उत्कृष्ट अनुभाग की उदीरणा आहारकशरीरी को न बताकर वैक्रियशरीरी को ही कही है ।

२ बृहत्संग्रहणी आदि ग्रन्थो मे पृथ्वीकाय के अनेक भेद बताये है । उनमे खर—कठिन पृथ्वीकाय की ही उत्कृष्ट आयु होती है, इसीलिए उन जीवो को यहाँ ग्रहण किया है । सूर्य के विमान के नीचे रहे रत्नो के जीवो के ही आतप नाम का उदय होता है और वे खर पृथ्वीकाय है तथा यद्यपि शरीर पर्याप्ति से पर्याप्त के आतप नाम का उदय हो सकता है, परन्तु उत्कृष्ट अनुभाग की उदीरणा तो पर्याप्त के ही होती है, इसलिए यहाँ पृथ्वीकाय के योग्य पर्याप्तियो से पर्याप्त का ग्रहण किया है ।

है वे ही जीव उस-उस आनुपूर्वी नामकर्म के उत्कृष्ट अनुभाग के उदीरक है। मात्र अपने-अपने भव के तीसरे समय मे वर्तमान जीवो का ग्रहण करना चाहिये। क्योकि आनुपूर्वीनाम का उदय विग्रहगति मे ही होता है तथा उदीरणा उदय सहभावी है और अधिक से अधिक विग्रह गति तीन समय की होती है। इसलिए यहा तीसरा समय लिया है। मनुष्य और देवानुपूर्वी के उत्कृष्ट अनुभाग के उदीरक विशुद्ध परिणामी और नरक-तिर्यंचानुपूर्वी के सक्लिष्ट परिणामी जानना चाहिये। तथा—

जोगन्ते सेसाण सुभाणमियराण चउसुवि गईसु।
पज्जत्तुक्कडमिच्छेसु लद्धिहीणेसु ओहीण ॥६८॥

शब्दार्थ—जोगन्ते—सयोगिकेवलीगुणस्थान के चरम समय मे सेसाण—शेष प्रकृतियो की, सुभाण—शुभ प्रकृतियो की, इयराण—इतर (अशुभ) प्रकृतियो की, चउसुवि—चारो ही, गइसु—गति के, पज्जत्तुक्कडमिच्छेसु—पर्याप्त उत्कृष्ट मिथ्यात्वी के, लद्धिहोणेसु—अवधिलब्धि रहित के, ओहीण—अवधिद्विक की।

गाथार्थ—शेष शुभप्रकृतियो के उत्कृष्ट अनुभाग की उदीरणा सयोगि के चरम समय मे होती है। पर्याप्त उत्कृष्ट मिथ्यात्वी चारो गति के जीवो के शेष प्रकृतियो के उत्कृष्ट अनुभाग की उदीरणा होती है। अवधिद्विक की अवधिलब्धिहीन को होती है।

विशेषार्थ—जिन प्रकृतियो के उत्कृष्ट अनुभाग की उदीरणा पूर्व मे कही जा चुकी है, उनके सिवाय शेष तैजससप्तक, मृदु-लघु स्पर्श के अतिरिक्त शेष शुभ वर्णादिनव, अगुरुलघु, स्थिर, शुभ, सुभग, आदेय, यश कीर्ति, निर्माण, उच्चगोत्र और तीर्थंकरनाम रूप पच्चीस शुभ प्रकृतियो के उत्कृष्ट अनुभाग की उदीरणा सयोगिकेवलीगुणस्थान के चरम समय मे वर्तमान जीवो के होती है। ये सभी पुण्य

प्रकृतिया है और सयोगिकेवली जैसे पुण्यशाली जीव हैं, जिससे उपर्युक्त पुण्य प्रकृतियो के उत्कृष्ट अनुभाग की उदीरणा सयोगिकेवली गुणस्थान मे बताई है। तथा—

इतर—मति, श्रुत, मनपर्याय और केवल ज्ञानावरण, केवलदर्शनावरण, मिथ्यात्व, सोलह कषाय, कर्कश-गुरु स्पर्श को छोडकर शेष अशुभ वर्णादिसप्तक, अस्थिर और अशुभ रूप इकतीस अशुभ प्रकृतियो के उत्कृष्ट अनुभाग की उदीरणा चारो गति के समस्त पर्याप्तियो मे पर्याप्त उत्कृष्ट सक्लेश मे वर्तमान मिथ्यादृष्टि जीव करते हैं। क्योंकि ये सभी पाप प्रकृतिया हैं। अत इनके उत्कृष्ट अनुभाग की उदीरणा तीव्र सक्लेश मे होती है और ऐसा तीव्र सक्लेश मिथ्यादृष्टियो के पर्याप्तावस्था मे होता है। इसीलिए यहाँ पर्याप्त मिथ्यादृष्टि का ग्रहण किया है तथा तीव्र सक्लेश सज्ञी मे होने से चारो गति के सज्ञी जीव समझना चाहिए। तथा—

अवधिज्ञानावरण, अवधिदर्शनावरण के उत्कृष्ट अनुभाग की उदीरणा अवधिज्ञान—अवधि दर्शनलब्धि रहित चारो गति के तीव्र सक्लिष्ट परिणामी मिथ्यादृष्टि के जानना चाहिये। अवधिज्ञान-दर्शनलब्धियुक्त जीवो के तो उनको उत्पन्न करते विशुद्ध परिणाम के कारण आवृत करने वाले कर्मो का अधिक रस क्षय होने से उत्कृष्ट रस सत्ता मे रहना नही है, जिससे उत्कृष्ट रस की उदीरणा नही हो सकती है। इसीलिये अवधिलब्धिहीन के उत्कृष्ट अनुभागोदीरणा बताई है।

इस प्रकार से उत्कृष्ट अनुभाग-उदीरणा का स्वामित्व जानना चाहिये। अब जघन्य अनुभाग-उदीरणा के स्वामियो का निर्देश करते हैं।

जघन्य अनुभाग- उदीरणास्वामित्व

सुयकेवलिणो मइसुयचक्खुअचक्खुणुदीरणा मन्दा।
विपुलपरमोहिगाणं मणनाणोहीदुगस्सा वि ॥६६॥

शब्दार्थ—सुयकेवलिणो—श्रुतकेवली के, मइसुयचक्खुअचक्खुणुदीरणा—मति-श्रुतज्ञानावरण, चक्षु-अचक्षुदर्शनावरण की उदीरणा, मन्दा—जघन्य, विपुलपरमोहिगाण—विपुलमति और परमावधिज्ञान वाले के, मणनाणोही-दुगस्सा—मनपर्यायज्ञानावरण और अवधिद्विक की वि—तथा ।

गाथार्थ—मति-श्रुतज्ञानावरण और चक्षु-अचक्षुदर्शनावरण के जघन्य अनुभाग की उदीरणा श्रुतकेवली को तथा मनपर्याय-ज्ञानावरण और अवधिज्ञानावरण-अवधिदर्शनावरण की जघन्य अनुभाग-उदीरणा अनुक्रम से विपुलमति मनपर्यायज्ञान वाले एव परमावधिज्ञान वाले के होती है ।

विशेषार्थ—इस गाथा से जघन्य अनुभाग-उदीरणा स्वामित्व की प्ररूपणा प्रारम्भ की है। जघन्य अनुभाग-उदीरणास्वामित्व के प्रसग मे यह ध्यान रखना चाहिये कि पापप्रकृतियो के जघन्य अनुभाग की उदीरणा विशुद्धपरिणामो मे और पुण्यप्रकृतियो के जघन्य अनुभाग की उदीरणा सक्लेश परिणामो से होती है। किस प्रकृति की जघन्य अनुभाग की उदीरणा के योग्य विशुद्धि और सक्लेश कहाँ होता है, इसका विचार करके स्वामित्व प्ररूपणा करना चाहिये।

कतिपय पापप्रकृतियो का जघन्य अनुभाग-उदीरणास्वामित्व इस प्रकार है—क्षीणकषायगुणस्थान की समयाधिक आवलिका स्थिति शेष रहे तब श्रुतकेवली—चौदह पूर्वधर के मतिज्ञानावरण, श्रुत-ज्ञानावरण, चक्षुदर्शनावरण और अचक्षुदर्शनावरण के जघन्य अनु-भाग की उदीरणा होती है तथा क्षीणकषायगुणस्थान की समयाधिक आवलिका प्रमाण स्थिति शेष रहे तब विपुलमतिमनपर्यायज्ञानी के मनपर्यायज्ञानावरण के और परमावधिज्ञानी के अवधिज्ञान-दर्शना-वरण के जघन्य अनुभाग की उदीरणा होती है। क्योकि श्रुतकेवली मनपर्यायज्ञानी और परमावधिज्ञानी के वह-वह ज्ञान जब उत्पन्न होता है तब तीव्र विशुद्धि के बल से अधिक अनुभाग का क्षय हुआ होता है

तथा क्षपकश्रेणि पर आरूढ हुए वे महात्मा रसघात द्वारा उस कर्म के अत्यधिक रस का नाश करते है। जिससे अत मे बारहवे गुणस्थान की समयाधिक आवलिका शेष रहे तब उक्त प्रकृतियो के जघन्य अनुभाग की उदीरणा होती है। चरम आवलिका उदयावलिका है जिससे उसमे किसी करण की प्रवृत्ति नही होती है, इसीलिये समयाधिक आवलिका शेप रहे तब जघन्य अनुभागोदीरणा होती है, यह कहा है। तथा—

> खवगम्मि विग्घकेवलसंजलणाण सनोकसायाण।
> सगसगउदीरणंते निद्दापयलाणमुवसंते ॥७०॥

शब्दार्थ—खवगम्मि—क्षपक के, विग्घकेवलसंजलणाण—अंतरायपंचक, केवलावरणद्विक, संज्वलन कषाय की, सनोकसायाण—नव नोकषायो सहित, सगसगउदीरणंते—अपनी-अपनी उदीरणा के अंत मे, निद्दापयलाणमुवसंते—निद्रा और प्रचला की उपशांत मोहगुणस्थान मे।

गाथार्थ—अतरायपचक, केवलावरणद्विक, सज्वलनकषाय, नवनोकषाय की जघन्य अनुभागउदीरणा क्षपक के अपनी-अपनी उदीरणा के अत मे तथा निद्रा और प्रचला की उपशातमोहगुणस्थान मे होती है।

विशेषार्थ—अन्तरायपचक, केवलज्ञानावरण, केवलदर्शनावरण, सज्वलनकषायचतुष्क और नव नोकषाय कुल बीस प्रकृतियो के जघन्य अनुभाग की उदीरणा क्षपकश्रेणि मे वर्तमान जीव के उन-उन प्रकृतियो की उदीरणा के अत मे होती है। अर्थात् उन-उन प्रकृतियो की अतिम उदीरणा जिस समय होती है, उस समय मे होती है। उनमे से अतरायपचक केवलज्ञानावरण और केवलदर्शनावरण की जघन्य अनुभाग उदीरणा बारहवे गुणस्थान की समयाधिक आवलिका शेष स्थिति हो तब होती है। सज्वलनकषायचतुष्क और तीन वेद के जघन्य अनुभाग

की उदीरणा[1] अनिवृत्तिबादरसपराय नामक नौवें गुणस्थान मे उस उस प्रकृति की अतिम उदीरणा के समय तथा हास्यषट्क की जघन्य अनुभाग उदीरणा अपूर्वकरण नामक आठवें गुणस्थान के चरम समय मे होती है और निद्रा एव प्रचला की उपशातमोहगुणस्थान मे[2] तीव्र विशुद्धि होने मे जघन्य अनुभाग-उदीरणा होती है। तथा—

> निद्दानिद्दाईण पमत्तविरए विसुज्झमाण मि ।
> वेयगसम्मत्तस्स उ सगखवणोदीरणा चरिमे ॥७१॥

शब्दार्थ—निद्दानिद्दाईण—निद्रा-निद्रात्रिक के, पमत्तविरए—प्रमत्तविरत के, विसुज्झमाणमि—उत्कृष्ट विशुद्धि वाले, वेयगसम्मत्तस्स—वेदकसम्यक्त्व के, सगखवणोदीरणा चरिमे—उस प्रकृति के क्षय काल मे अतिम उदीरणा।

---

१ यहा और कर्मप्रकृति उदीरणाकरण गाथा ७० की मलयगिरि टीका मे चारो सज्वलन और तीन वेद के जघन्य अनुभाग की उदीरणा नौवें गुणस्थान मे बताई है। किन्तु गाथा मे अपनी-अपनी उदीरणा के अत में क्षपकश्रेणि मे कही है। अत सज्वलनलोभ की जघन्य अनुभाग-उदीरणा क्षपक के सूक्ष्मसपराय की समयाधिक आवलिका शेष हो तब घटित होती है और कर्मप्रकृति उदीरणाकरण गाथा ७० की उपाध्याय यशोविजयजी कृत टीका मे भी इसी प्रकार बतलाया है। जो अधिक समीचीन ज्ञात होता है।

जो निद्राद्विक का उदय क्षपकश्रेणि और क्षीणमोहगुणस्थान मे नही मानते, उनके मत से उपशातमोहगुणस्थान मे जघन्यानुभाग की उदीरणा समझना चाहिये और जो क्षपकश्रेणि मे निद्रा का उदय मानते हैं उनके मत से बारहवें गुणस्थान की दो समयाधिक आवलिका शेष रहे तब जघन्य अनुभाग-उदीरणा होती है, यह जानना चाहिये।

गाथार्थ—निद्रा-निद्रात्रिक के जघन्य अनुभाग की उदीरणा उत्कृष्ट विशुद्धि वाले प्रमत्तविरत के तथा वेदकसम्यक्त्व की उस प्रकृति के क्षयकाल मे अन्तिम उदीरणा के समय होती है।

विशेषार्थ—निद्रा-निद्रा, प्रचला-प्रचला और स्त्यानर्द्धि के जघन्य अनुभाग की उदीरणा विशुद्धि वाले—अप्रमत्तसयतगुणस्थान के अभि-मुख प्रमत्तसयत के होती है। क्योकि स्त्यानर्द्धित्रिक का उदय छठे, प्रमत्तसयतगुणस्थान पर्यन्त ही होता है। तथा—

क्षायिकसम्यक्त्व उत्पन्न करने के पहले मिथ्यात्वमोहनीय और मिश्रमोहनीय का क्षय करे और उसके बाद सम्यक्त्वमोहनीय का क्षय करते उसकी जब समयाधिक आवलिका प्रमाण स्थिति सत्ता मे शेष रहे तब होने वाली अन्तिम उदीरणा के काल मे सम्यक्त्वमोहनीय के जघन्य अनुभाग की उदीरणा होती है और वह उदीरणा चारो गति मे से किसी भी गति वाले विशुद्ध परिणामी जीव के होती है। क्योकि सम्यक्त्वमोहनीय की अन्तर्मुहूर्त प्रमाण स्थिति सत्ता मे शेष रहे और आयु पूर्ण हो तो चाहे जिस गति मे जाता है और उस अन्तर्मुहूर्त प्रमाण स्थिति का क्षय कर डालता है। उसको क्षय करते-करते समया-धिक आवलिका प्रमाण स्थिति शेष रहे तब सम्यक्त्वमोहनीय की अन्तिम उदीरणा होती है। और यह जघन्य उदीरणा विशुद्ध परिणाम वाले को समझना चाहिए। तथा—

सम्मपडिवत्तिकाले पंचण्हवि संजमस्स चउचउसु।
सम्माभिमुहो मीसे आऊण जहण्णठितिगोत्ति ॥७२॥

शब्दार्थ—**सम्मपडिवत्तिकाले**—सम्यक्त्व की प्राप्ति के समय मे, **पच-ण्हवि**—पांच की भी, **सजमस्स**—सयम की प्राप्ति काल मे, **चउचउसु**—चार-चार की, **सम्माभिमुहो**—सम्यक्त्व की प्राप्ति के अभिमुख, **मीसे**—मिश्रमोह-नीय की, **आऊण**—आयु की, **जहण्णठितिगोत्ति**—जघन्य आयु-स्थिति वाला।

जो सम्यग्मिथ्यादृष्टि अनन्तर समय मे सम्यक्त्व प्राप्त करेगा, उस सम्यग्मिथ्यादृष्टि के मिश्रमोहनीय के जघन्य अनुभाग की उदीरणा होती है। क्योंकि मिश्रदृष्टि वाला तथाप्रकार की विशुद्धि के अभाव मे सम्यक्त्व और सयम एक साथ प्राप्त नही करता, परन्तु सम्यक्त्व को ही प्राप्त कर सकता है। इसीलिए गाथा मे 'सम्माभिमुहोमीसे' पद दिया है। जिसका अर्थ यह है कि सम्यक्त्व के सन्मुख हुआ मिश्रदृष्टि मिश्रमोहनीय के जघन्य अनुभाग का उदीरक है। तथा—

अपनी-अपनी आयु की जघन्य स्थिति मे वर्तमान अर्थात् जघन्य आयु वाले चारो गति के जीव अपनी-अपनी आयु के जघन्य अनुभाग की उदीरणा करते है। इनमे नरकायु के सिवाय तीन आयु का जघन्य स्थितिबध सक्लेशवशात् होता है और जघन्य अनुभाग बध भी उसी समय होता है। क्योकि नरकायु के बिना तीन आयु पुण्य प्रकृतिया हैं, उनकी जघन्य स्थिति और साथ ही जघन्य रस बध भी सक्लेश से होता है, जिससे इन तीन आयु की जघन्य अनुभाग-उदीरणा के अधिकारी जघन्य आयु वाले है और नरकायु का जघन्य स्थिति बध विशुद्धि वशात् होता है और उसका जघन्य रसबध भी उसी समय ही होता है। क्योंकि नरकायु पाप प्रकृति है। इसलिए उसका जघन्य स्थितिबध और साथ मे जघन्य रसबध भी विशुद्धि के योग मे होता है। जिससे नरकायु के जघन्य रस की उदीरणा का अधिकारी भी उसकी जघन्यस्थिति वाला जीव है। तात्पर्य यह हुआ कि नरकायु के बिना शेष तीन आयु के जघन्य-अनुभाग का उदीरक उस उस आयु की जघन्य स्थिति मे वर्तमान अति सक्लिष्ट परिणामी और नरकायु के जघन्य अनुभाग का उदीरक अपनी जघन्य स्थिति मे वर्तमान अति विशुद्ध परिणाम वाला जीव है। तथा—

पोग्गलविवागियाण भवाइसमये विसेसमुरलस्स ।
सुहुमापज्जो वाऊ बादरपज्जत्त वेउव्वे ॥७३॥

पाग के और जिसने वैक्रिय की उद्वलना की है ऐसा असज्ञी मे मे आया हुआ अति क्रूर नारक वैक्रिय-अगोपाग के जघन्य अनुभाग की उदीरणा करता है।

विशेषार्थ—अल्प आयु वाला द्वीन्द्रिय अपने भव के प्रथम समय मे औदारिक-अगोपाग के जघन्य अनुभाग की उदीरणा करता है तथा पूर्व मे उद्वलित नि.सत्ताक किये गये वैक्रिय-अगोपाग को अल्प काल बाधकर अपनी आयु के अत मे अपनी भूमिका के अनुसार दीर्घ आयु-वाला नारक हो, यानि कि एकेन्द्रिय भव मे वैक्रिय की उद्वलना कर डाली और वहाँ मे च्यवकर असज्ञी पचेन्द्रिय हो, वहाँ अल्पकाल वैक्रिय का बध कर जितनी अधिक आयु बध सके, उतनी बाधकर नारक हो। असज्ञी नारक का पल्योपम के असख्यातवे भाग प्रमाण आयु बाधता है, अतएव उतनी आयु मे नारक हो तो वह अति सक्लिष्ट परिणामी नारक अपने भव के प्रथम समय मे वैक्रिय अगोपाग के जघन्य अनुभाग की उदीरणा करता है। तथा—

मिच्छोऽन्तरे किलिट्ठो वीसाइ धुवोदयाण सुभियाण ।
आहारजई आहारगस्स अविसुद्धपरिणामो ॥७५॥

शब्दार्थ—मिच्छोऽन्तरे—विग्रहगति मे वर्तमान मिथ्यादृष्टि, किलिट्ठो—सक्लिष्ट, वीसाइ—बीस धुवोदयाण—ध्रुवोदया सुभियाण—शुभ, आहारजई—आहारक यति आहारगस्स—आहारकसप्तक के, अविसुद्ध-परिणामो—अविशुद्ध परिणामी।

गाथार्थ—विग्रहगति मे वर्तमान सक्लिष्ट मिथ्यादृष्टि ध्रुवोदया बीस शुभ प्रकृतियो के तथा विशुद्ध परिणामी आहारक यति आहारकसप्तक के जघन्य अनुभाग की उदीरणा करता है।

विशेषार्थ—विग्रहगति मे वर्तमान अनाहारी अति सक्लिष्ट परिणामी मिथ्यादृष्टि तैजससप्तक, एव मृदु, लघु स्पर्श वर्जित

अपनी आयु की उत्कृष्ट स्थिति मे वर्तमान अर्थात् स्वप्रायोग्य उत्कृष्ट आयु वाला यानि पूर्वकोटि की आयु वाला आहारी भव के प्रथम समय मे वर्तमान वही असज्ञी पचेन्द्रिय जीव मध्य के चार सस्थान के जघन्य अनुभाग की उदीरणा का स्वामी है तथा सेवार्त और वज्रऋषभ नाराचसहनन को छोडकर बीच के चार सहनन के जघन्य अनुभाग की उदीरणा का स्वामी पूर्वकोटि वर्ष की आयु वाला भव के प्रथम समय मे वर्तमान आहारी और विशुद्ध परिणाम वाला मनुष्य है। क्योकि उक्त प्रकृतिया अशुभ है। उनकी जघन्य रसोदीरणा मे विशुद्ध परिणाम हेतु है। दीर्घ आयु वाला विशुद्ध परिणामी होता है, इसीलिये यहाँ दीर्घायु वाले का ग्रहण किया है। तिर्यन्च पचेन्द्रिय की अपेक्षा मनुष्य प्राय अल्प बल वाले होते है, इसलिये उक्त अशुभ सहनन की जघन्य अनुभाग-उदीरणा के स्वामी के रूप मे मनुष्य कहा है। तथा—

हुण्डोवघायसाहारणाण सुहुमो सुदीह पज्जत्तो।
परघाए लहुपज्जो आयावुज्जोय तज्जोगो ॥७७॥

शब्दार्थ—**हुण्डोवघायसाहारणाण**—हुण्डक-सस्थान, उपघात, साधारण नाम का, **सुहुमो**—सूक्ष्म, **सुदीह**—दीर्घस्थिति वाला, **पज्जत्तो**—पर्याप्त, **परघाए**—पराघात की, **लहुपज्जो**—शीघ्र पर्याप्त, **आयावुज्जोय**—आतप उद्योत का, **तज्जोगो**—तद्योग्य।

गाथार्थ—हुण्डकसस्थान, उपघात और साधारण नाम के जघन्य अनुभाग की उदीरणा का स्वामी दीर्घस्थिति वाला पर्याप्त सूक्ष्म एकेन्द्रिय है। पराघात की जघन्य अनुभाग उदीरणा का स्वामी शीघ्र पर्याप्त हुआ तथा आतप-उद्योत की जघन्य अनुभाग-उदीरणा का स्वामी तद्योग्य पृथ्वीकाय है।

विशेषार्थ—अपने योग्य दीर्घ आयु वाला अति विशुद्ध परिणामी पर्याप्त सूक्ष्म एकेन्द्रिय हुण्डक सस्थान, उपघात और साधारण नाम के

का स्वामी उदय के प्रथम समय मे वर्तमान सूक्ष्म एकेन्द्रिय है वैसे ही उदय के प्रथम समय मे वर्तमान सूक्ष्म एकेन्द्रिय जानना चाहिये तथा—

कक्खडगुरुणमथे विणियट्टे णामअसुहधुवियाण ।
जोगंतमि नवण्हं तित्थस्साउज्जियाइंमि ॥७६॥

शब्दार्थ—कक्खडगुरुणमंथे—कर्कश और गुरु स्पर्श की मथान के, विणियट्टे—सहार के समय मे, णामअसुहधुवियाण—नामकर्म की अशुभ ध्रुवोदया प्रकृतियो की, जोगतमि—सयोगिकेवली के अत समय मे, नवण्ह—नौ की, तित्थस्साउज्जियाइमि—तीर्थंकर नाम की आयोजिकाकरण के पहले समय मे।

गाथार्थ—कर्कश और गुरु स्पर्श की मथान के सहार समय मे, नामकर्म की अशुभ नौ ध्रुवोदया प्रकृतियो की सयोगिकेवली के अत समय मे और तीर्थंकरनाम की आयोजिकाकरण के पहले समय मे जघन्य अनुभाग-उदीरणा होती है।

विशेषार्थ—समुद्घात से निवृत्त होते समय मथान के सहरणकाल मे कर्कश और गुरु स्पर्श की जघन्य अनुभाग-उदीरणा होती है तथा कृष्ण, नील वर्ण, दुरभिगध, तिक्त-कटुरस, शीत-रूक्षस्पर्श, अस्थिर और अशुभनाम रूप नामकर्म की नौ अशुभ ध्रुवोदया प्रकृतियो के जघन्य अनुभाग की उदीरणा सयोगिकेवलीगुणस्थान के चरम समय मे वर्तमान जीव करता है। ये सभी पापप्रकृतिया है, जिनके मद रस की उदीरणा विशुद्धिसपन्न जीव करता है और तेरहवे गुणस्थान के चरम समय मे सर्वोत्कृष्ट विशुद्धि होने से इनके जघन्य अनुभाग की उदीरणा का वह अधिकारी है।

तीर्थंकरनाम के मद अनुभाग की उदीरणा आयोजिकाकरण के पहले समय मे वर्तमान जीव करता है। आयोजिकाकरण प्रत्येक केवलि भगवान के होता है और वह केवलिसमुद्घात के पूर्व होता है।

प्रकृति के जघन्य अनुभाग की और पापप्रकृति बाधकर पुण्यप्रकृति बाधने पर पापप्रकृति के जघन्य अनुभाग की उदीरणा होती है। परावर्तमानभाव हो तब परिणाम की मदता होती है, जिससे उस समय तीव्र विशुद्धि या तीव्र सक्लेश नही होता है। अतएव तीव्र रस-बध या तीव्र रस की उदीरणा नही होती है, किन्तु मद रसबध और मद रस की उदीरणा होती है।

इस प्रकार से जघन्य अनुभाग उदीरणा का स्वामित्व जानना चाहिये। अब समस्त कर्म प्रकृतियो के जघन्य और उत्कृष्ट अनुभागो-दीरणा के स्वामित्व का सामान्य से बोध कराने के लिये उपाय बताते है—

परिणामप्रत्यय या भवप्रत्यय इन दोनो मे से किस प्रत्यय-कारण से कर्म प्रकृतियो की उदीरणा होती है ? तथा जिस प्रकृति की उदीरणा हुई है, वह पुण्य प्रकृति है या पाप प्रकृति है ? और गाथागत अपि शब्द से पुद्गल, क्षेत्र, भव या जीव मे किस विपाक वाली है ? इसका विचार करना चाहिये और इन सबका यथोचित विचार करके विपाकी—जघन्य अनुभाग-उदीरणा का या उत्कृष्ट अनुभाग-उदीरणा का स्वामी कौन है, यह यथावत् समझ लेना चाहिये। जैसे कि परिणामप्रत्ययिक अनुभागोदीरणा प्राय उत्कृष्ट होती है और भवप्रत्ययिक प्राय: जघन्य तथा शुभप्रकृतियो के जघन्य अनुभाग की उदीरणा सक्लेश से और उत्कृष्ट अनुभाग-उदी-रणा विशुद्धि से होती है और अशुभ प्रकृतियो के जघन्य रस की उदी-रणा विशुद्धि से तथा उत्कृष्ट अनुभाग की उदीरणा सक्लेश से होती है। पुद्गलादि प्रत्ययो की जब प्रकर्षता—पुष्टता हो तब उत्कृष्ट और भव के प्रथम समय मे जघन्य अनुभाग-उदीरणा होती है।

इस प्रकार प्रत्ययादि का यथावत् विचार कर उस-उस प्रकृति के उदय वाले को जघन्य या उत्कृष्ट अनुभाग उदीरणा के स्वामित्व का निर्णय कर लेना चाहिये।

मूलप्रकृतिसम्बन्धी साद्यादि प्ररूपणा

पचण्हमणुक्कोसा तिहा चउद्धा य वेयमोहाणं ।
सेसवियप्पा दुविहा सव्वविगप्पाउ आउस्स ॥८१॥

शब्दार्थ—**पचण्हमणुक्कोसा**—पाँच कर्मों की अनुत्कृष्ट प्रदेश-उदीरणा, **तिहा**—तीन प्रकार की, **चउद्धा**—चार प्रकार की, **य**—और, **वेय मोहाण**—वेदनीय, मोहनीय की, **सेसवियप्पा**—शेष विकल्प, **दुविहा**—दो प्रकार के, **सव्वविगप्पाउ**—सभी विकल्प, **आउस्स**—आयु के ।

गाथार्थ—पाच कर्मों की अनुत्कृष्ट प्रदेशउदीरणा तीन प्रकार की और वेदनीय, मोहनीय की चार प्रकार की है। उक्त कर्मों के शेष विकल्प तथा आयु के सर्व विकल्प दो प्रकार के हैं ।

विशेषार्थ—'पचण्ह' अर्थात् ज्ञानावरण, दर्शनावरण, अतराय, नाम और गोत्र कर्म रूप पाच मूल कर्मप्रकृतियो की अनुत्कृष्ट प्रदेशोदीरणा अनादि, ध्रुव और अध्रुव इस तरह तीन प्रकार की है। वह इस प्रकार—उक्त कर्मों की उत्कृष्ट प्रदेशोदीरणा गुणितकर्माश जीव के अपनी-अपनी उदीरणा के अन्त मे होती है। उसके नियत काल पर्यन्त ही होने से सादि सात है। उसके अतिरिक्त शेष सब उदीरणा अनुत्कृष्ट है और उसके अनादि काल से प्रवर्तमान होने से अनादि है। अभव्य की अपेक्षा ध्रुव और भव्य की अपेक्षा अध्रुव जानना चाहिये ।

उक्त पाँच कर्मों मे से तीन घाति कर्मों की अन्तिम उदीरणा बारहवे और अघाति कर्मद्विक की तेरहवें गुणस्थान मे होने से और उन दोनो गुणस्थानो से पतन का अभाव होने से सादि भग सभव नही है। तथा—

वेदनीय और मोहनीय कर्म की अनुत्कृष्ट प्रदेशोदीरणा 'चउद्धा'—सादि, अनादि, ध्रुव और अध्रुव इस तरह चार प्रकार की है। जो इस प्रकार—वेदनीय की उत्कृष्ट प्रदेशोदीरणा अप्रमत्तभाव के सन्मुख

त्कृष्ट, सेसविगप्पा—शेष विकल्प, दुविहा—दो प्रकार के, सव्वविगप्पा—सर्व विकल्प, सेषाण—शेष प्रकृतियो के ।

गाथार्थ—ध्रुवोदया प्रकृतियो की अनुत्कृष्ट प्रदेशोदीरणा तीन प्रकार की और मिथ्यात्व की चार प्रकार की है । शेष विकल्प दो प्रकार के हैं तथा शेष प्रकृतियो के सर्व विकल्प दो प्रकार के है ।

विशषार्थ -ध्रुवोदया सैंतालीस प्रकृतियो की अनुत्कृष्ट प्रदेशोदीरणा अनादि, ध्रुव और अध्रुव है । वह इस प्रकार—पाच ज्ञानावरण, पाच अतराय और चार दर्शनावरण रूप चौदह प्रकृतियो की उत्कृष्ट प्रदेशोदीरणा अपनी-अपनी उदीरणा के पर्यवसान के समय बारहवे गुणस्थान की समयाधिक आवलिका शेष रहे तब गुणितकर्माश जीव के होती है । वह नियत काल पर्यन्त होने से सादि है । उसके अतिरिक्त अन्य समस्त अनुत्कृष्ट प्रदेशोदीरणा है और वह अनादिकाल से प्रवर्तमान होने से अनादि है । अभव्यापेक्षा ध्रुव और भव्यापेक्षा अध्रुव सात है । तथा—

तैजससप्तक, वर्णादि वीस, स्थिर, अस्थिर, शुभ, अशुभ, अगुरुलघु और निर्माण इन तेतीस प्रकृतियो की उत्कृष्ट प्रदेशोदीरणा गुणितकर्माश सयोगिकेवली के चरम समय मे होती है इसलिये सादि-सात है । क्योकि वह समय मात्र ही होती है । उसके अतिरिक्त अन्य सभी अनुत्कृष्ट है और वह अनादिकाल से प्रवर्तमान होने से अनादि है । अभव्य की अपेक्षा ध्रुव और भव्य की अपेक्षा अध्रुव है ।

'मिच्छस्स चउव्विहा' अर्थात् मिथ्यात्व की अनुत्कृष्ट प्रदेशोदीरणा सादि, अनादि, ध्रुव और अध्रुव इस तरह चार प्रकार की है । वह इस प्रकार—सयम के साथ ही सम्यक्त्व को प्राप्त करने के उन्मुख मिथ्यादृष्टि को उत्कृष्ट प्रदेशोदीरणा होती है और उसको नियत काल पर्यन्त होने से सादि सात है । उसके अतिरिक्त शेष सब अनुत्कृष्ट

गाथार्थ—घातिकर्मों की जघन्य अनुभागउदीरणा के जो स्वामी है, वे ही उन घातिकर्मों की उत्कृष्ट प्रदेशोदीरणा के स्वामी है।

विशेषार्थ—पूर्व मे जो जघन्य अनुभाग-उदीरणा के प्रसग मे घाति-कर्मों की जघन्य अनुभागउदीरणा के स्वामी बताये है वे ही घातिकर्मों की उत्कृष्ट प्रदेशोदीरणा के स्वामी जानना चाहिये। जिसका स्पष्टी-करण इस प्रकार है—

अवधिज्ञानावरण के सिवाय चार ज्ञानावरण चक्षु, अचक्षु और केवल दर्शनावरण इन सात प्रकृतियो की क्षीणमोहगुणस्थान की समयाधिक आवलिका शेष रहे तब गुणितकर्मांश जीव के तथा अवधि-ज्ञानावरण, अवधिदर्शनावरण की क्षीणमोहगुणस्थान की समयाधिक आवलिका शेष रहे तब अवधिलब्धिरहित गुणितकर्मांश के उत्कृष्ट प्रदेशोदीरणा होती है। इस समय गुणितकर्मांश समय प्रमाण जघन्य स्थिति, जघन्य अनुभाग और उत्कृष्ट प्रदेश की उदीरणा करता है। बारहवें गुणस्थान की समयाधिक आवलिका प्रमाण स्थिति शेष रहे तब उक्त प्रकृतियो की भी उतनी ही स्थिति सत्ता मे शेष रहती है। अतिम आवलिका उदयावलिका होने से उसके ऊपर की समय प्रमाण स्थिति और उस स्थितिस्थान मे के जघन्य रसयुक्त अधिक से अधिक दलिको को गुणितकर्मांश जीव उदीरता है।[1]

---

1 बारहवें गुणस्थान की समयाधिक आवलिका शेष स्थिति रहे तब प्रत्येक के जघन्य स्थिति की उदीरणा तो होती है, परन्तु प्रत्येक के जघन्य रस की ही उदीरणा होती तो जघन्य रस की उदीरणा के अधिकार मे उत्कृष्ट श्रुतज्ञानी के या विपुलमति मनपर्यायज्ञानी के इस तरह के विशेषण जोडकर जघन्य अनुभागोदीरणा न कहते। परन्तु सामान्य से यह कहा जाता कि बारहवें गुणस्थान की समयाधिक आवलिका शेष रहे तब

(शेष अगले पृष्ठ पर)

गाथार्थ—घातिकर्मों की जघन्य अनुभागउदीरणा के जो स्वामी है, वे ही उन घातिकर्मों की उत्कृष्ट प्रदेशोदीरणा के स्वामी है।

विशेषार्थ—पूर्व मे जो जघन्य अनुभाग-उदीरणा के प्रसग मे घातिकर्मों की जघन्य अनुभागउदीरणा के स्वामी बताये है वे ही घातिकर्मों की उत्कृष्ट प्रदेशोदीरणा के स्वामी जानना चाहिये। जिसका स्पष्टीकरण इस प्रकार है—

अवधिज्ञानावरण के सिवाय चार ज्ञानावरण चक्षु, अचक्षु और केवल दर्शनावरण इन सात प्रकृतियो की क्षीणमोहगुणस्थान की समयाधिक आवलिका शेष रहे तब गुणितकर्माश जीव के तथा अवधिज्ञानावरण, अवधिदर्शनावरण की क्षीणमोहगुणस्थान की समयाधिक आवलिका शेष रहे तब अवधिलब्धिरहित गुणितकर्माश के उत्कृष्ट प्रदेशोदीरणा होती है। इस समय गुणितकर्माश समय प्रमाण जघन्य स्थिति, जघन्य अनुभाग और उत्कृष्ट प्रदेश की उदीरणा करता है। बारहवे गुणस्थान की समयाधिक आवलिका प्रमाण स्थिति शेष रहे तब उक्त प्रकृतियो की भी उतनी ही स्थिति सत्ता मे शेष रहती है। अतिम आवलिका उदयावलिका होने से उसके ऊपर की समय प्रमाण स्थिति और उस स्थितिस्थान मे के जघन्य रसयुक्त अधिक से अधिक दलिको को गुणितकर्माश जीव उदीरता है।[1]

---

१ बारहवें गुणस्थान की समयाधिक आवलिका शेष स्थिति रहे तब प्रत्येक के जघन्य स्थिति की उदीरणा तो होती है, परन्तु प्रत्येक के जघन्य रस की ही उदीरणा होती तो जघन्य रस की उदीरणा के अधिकार मे उत्कृष्ट श्रुतज्ञानी के या विपुलमति मनपर्यायज्ञानी के इस तरह के विशेषण जोडकर जघन्य अनुभागोदीरणा न कहते। परन्तु सामान्य से यह कहा जाता कि बारहवें गुणस्थान की समयाधिक आवलिका शेष रहे तब

(शेष अगले पृष्ठ पर)

उत्कृष्ट प्रदेशोदीरणा होती है तथा वह गुणितकर्मांश जीव के होती है, यह समझना चाहिये। तथा—

वेयणियाण पमत्तो अपमत्तत्ता जया उ पडिवज्जे।
सघयणपणगतणुदुगुज्जोयाण तु अपमत्तो ॥८४॥

शब्दार्थ—वेयणियाण—वेदनीय की पमत्तो—प्रमत्तसयत, अपमत्तत्त—अप्रमत्तत्व को, जया—जब, उ—ही, पडिवज्जे—प्राप्त करने वाला, सघयणपणग—सहननपचक, तणुदुगुज्जोयाण—तनुद्विक और उद्योत का, तु—और, अपमत्तो—अप्रमत्तसयत।

गाथार्थ—वेदनीय की उत्कृष्ट प्रदेशोदीरणा का स्वामी अप्रमत्तत्व प्राप्त करने वाला प्रमत्त है तथा सहननपचक, तनुद्विक और उद्योत का उत्कृष्टप्रदेशोदीरक अप्रमत्तसयत है।

विशेषार्थ—जो बाद के (आगे के) समय मे अप्रमत्तत्व प्राप्त करेगा ऐसा प्रमत्तसयत साता-असाता रूप वेदनीयकर्म की उत्कृष्ट प्रदेशोदीरणा का स्वामी है। क्योकि उसके सर्वविशुद्ध परिणाम होते है और विशुद्ध परिणामो से उनकी उत्कृष्ट प्रदेशोदीरणा होती है तथा प्रथम सहनन के सिवाय शेप पाच सहनन, वैक्रियसप्तक, आहारकसप्तक और उद्योत नामकर्म की उत्कृष्ट प्रदेशोदीरणा का स्वामी अप्रमत्तसयत है। तथा—

तिरियगईए देसो अणुपुव्विगईण खाइयो सम्मो।
दुभगाईनीआण विरइ अब्भुट्ठिओ सम्मो ॥८५॥

शब्दार्थ—तिरियगईए—तिर्यंचगति की, देसो—देशविरत, अणुपुव्विगईण—आनुपूर्वी और गतियो का, खाइयो सम्मो—क्षायिक सम्यग्दृष्टि, दुभगाईनीआण—दुर्भग आदि और नीचगोत्र की, विरइ—विरति, अब्भुट्ठिओ—सन्मुख हुआ, सम्मो—सम्यग्दृष्टि।

चायु) की उत्कृष्ट प्रदेशोदीरणा का स्वामी आठ वर्ष की आयु वाला आठवे वर्ष मे वर्तमान क्रमश मनुष्य और तिर्यंच जानना चाहिये ।

विशेषार्थ—जघन्य और उत्कृष्ट स्थिति वाला गुरु असाता—दु ख से आक्रान्त देव और नारक अनुक्रम से देवायु, नरकायु की उत्कृष्ट प्रदेशोदीरणा का स्वामी है। इसका तात्पर्य यह है कि दस हजार वर्ष की आयु वाला अत्यन्त चरम दु:ख के उदय मे वर्तमान अर्थात् दु खी देव देवायु की उत्कृष्ट प्रदेशोदीरणा का स्वामी है क्योंकि पुण्य का प्रकर्ष अल्प होने से अल्प आयु वाला देव दु खी हो सकता है और मित्रवियोगादि के कारण तीव्र दु खोदय भी सभव है तथा तीव्र दु ख आयु की प्रबल उदीरणा होने मे कारण है, इसीलिये अल्प आयु वाले देव का ग्रहण किया है तथा तेतीस सागरोपम की आयु वाला अत्यन्त दु खी नारक नरकायु की उत्कृष्ट प्रदेशोदीरणा करता है। क्योकि अधिक दुःख का अनुभव करने वाला अधिक पुद्गलो का क्षय करता है, इसलिये उसका ग्रहण किया है तथा इतर—तिर्यंचायु, मनुष्यायु की उत्कृष्ट प्रदेशोदीरणा का स्वामी अनुक्रम से आठ वर्ष की आयु वाला आठवे वर्ष मे वर्तमान अत्यन्त दु खी तिर्यंच और मनुष्य जानना चाहिये। तथा—

एगतेण चिय जा तिरिक्खजोग्गाऊ ताण ते चेव ।
नियनियनामविसिट्ठा अपज्जनामस्स मणु सुद्धो ॥८७॥

शब्दार्थ—एगतेण चिय—एकान्त रूप से ही, जा—जो, तिरिक्खजोग्गाऊ—तिर्यंचप्रायोग्य, ताण—उनकी, ते चेव—वही, नियनियनामविसिट्ठा—अपने-अपने विशिष्ट नाम वाले, अपज्जनामस्स—अपर्याप्त नाम की, मणु—मनुष्य, सुद्धो—विशुद्ध ।

गाथार्थ—एकान्त रूप से तिर्यंचगति उदयप्रायोग्य प्रकृतियो की उत्कृष्ट प्रदेशोदीरणा के स्वामी उस-उस विशिष्ट नामवाले

तिर्यच है तथा अपर्याप्तनाम की उत्कृष्ट प्रदेशोदीरणा का स्वामी विशुद्ध परिणाम वाला मनुष्य है।

विशेषार्थ—जिन प्रकृतियो का एकान्तत तिर्यचगति मे ही उदय हो ऐसी एकेन्द्रियजाति, द्वीन्द्रियजाति, त्रीन्द्रियजाति, चतुरिन्द्रियजाति, आतप, स्थावर, सूक्ष्म और साधारण इन आठ प्रकृतियो की उत्कृष्ट प्रदेशोदीरणा के स्वामी उस-उस नाम वाले तिर्यच ही है। जैसे कि एकेन्द्रियजाति और स्थावर नाम की उत्कृष्ट प्रदेशोदीरणा का स्वामी अपने योग्य सर्वविशुद्ध बादर एकेन्द्रिय पृथ्वीकायिक, आतपनाम की की खर बादर पृथ्वीकायिक, सूक्ष्मनाम की पर्याप्त सूक्ष्म एकेन्द्रिय, साधारणनाम की साधारण वनस्पति और विकलेन्द्रियजाति की विकलेन्द्रिय जीव उत्कृष्ट प्रदेशोदीरणा के स्वामी है। ये सभी अपने-अपने योग्य उत्कृष्ट विशुद्धि मे वर्तमान जीव उत्कृष्ट प्रदेशोदीरणा के स्वामी समझना चाहिये। तथा—

अपर्याप्तनाम की उत्कृष्ट प्रदेशोदीरणा का स्वामी अपर्याप्तावस्था के चरम समय मे वर्तमान विशुद्ध परिणाम वाला सम्मूर्च्छिम अपर्याप्त मनुष्य जानना चाहिये। तथा—

जोगतुदीरणाण जोगंते दुसरसुसरसासाण।
नियगते केवलीण सव्वविसुद्धस्स सेसाण ॥८८॥

शब्दार्थ—**जोगतुदीरणाण**—सयोगि के अत मे उदीरणा योग्य की, **जोगते**—चरम समय मे वतमान सयोगिकेवली के, **दुसरसुसरसासाण**—दुस्वर, सुस्वर उच्छ्वास की, **नियगते**—उनके अतकाल मे, **केवलीण**—केवली के, **सव्वविसुद्धस्स**—सर्वविशुद्ध परिणाम वाले के, **सेसाण**—शेप प्रकृतियो की।

गाथार्थ—सयोगि के अन्त मे उदीरणायोग्य की उत्कृष्ट प्रदेशोदीरणा चरम समय मे वर्तमान सयोगिकेवली के तथा दुस्वर, सुस्वर और उच्छ्वास नाम की उत्कृष्ट प्रदेशोदीरणा उनके अन

काल (निरोध काल) मे सयोगिकेवली के होती है तथा शेष प्रकृतियो की उत्कृष्ट प्रदेशोदीरणा सर्वविशुद्ध परिणाम वाले के होती है।

विशेषार्थ—जिन प्रकृतियो के उदीरक चरम समय मे वर्तमान सयोगिकेवली है ऐसी मनुष्यगति, पचेन्द्रियजाति, तैजससप्तक, औदारिकसप्तक, सस्थानषट्क, प्रथम सहनन, वर्णादि बीस, अगुरुलघु, उपघात, पराघात, विहायोगतिद्विक, त्रस, बादर, पर्याप्त, प्रत्येक, स्थिर, अस्थिर, शुभ, अशुभ, सुभग, आदेय, यश कीर्ति, निर्माण, तीर्थंकर और उच्चगोत्र रूप बासठ प्रकृतियो की उत्कृष्ट प्रदेशोदीरणा करने वाले चरम समय मे वर्तमान सयोगिकेवली है।

सुस्वर, दु स्वर की स्वर के निरोधकाल मे और उच्छ्वासनाम की उच्छ्वास के निरोधकाल मे सयोगिकेवली उत्कृष्ट प्रदेशोदीरणा करते है तथा पूर्वोक्त से शेष रही जिन प्रकृतियो को उत्कृष्ट प्रदेशोदीरणा के स्वामो नही कहे हो, उन प्रकृतियो को उत्कृष्ट प्रदेशोदीरणा उस-उस प्रकृति के उदय वाले सर्वविशुद्ध परिणामो जानना चाहिये। जिसका आशय यह है कि शेष प्रकृतियो मे पाँच अतराय और सम्यक्त्वमोहनोय कर्म रहता है। इनमे से अतराय की उत्कृष्ट प्रदेशोदीरणा बारहवे गुणस्थान की समयाधिक आवलिका शेष रहे तब गुणितकर्माश जोव के होतो हे और मिश्रमोहनीयकर्म जब सर्व-सक्रम द्वारा सम्यक्त्वमोहनोय मे सक्रमित हो तब सम्यक्त्वमोहनोय की उत्कृष्ट प्रदेशसत्ता होतो है, मिश्रमोहनोय सक्रमित होने के बाद सक्रमावलिका के अनन्तर सम्यक्त्वमोहनाय को उत्कृष्ट प्रदेशोदीरणा गुणितकर्माश के सभव है।

इस प्रकार से उत्कृष्ट प्रदेशोदीरणास्वामित्व जानना चाहिये। अब जघन्य प्रदेशोदीरणास्वामित्व का कथन करते हैं।

अगुरुलघु, उच्छ्वास, उद्योत, विहायोगतिद्विक, त्रस, बादर, पर्याप्त, प्रत्येक, स्थिर, अस्थिर, शुभ, अशुभ, सुभग, दुर्भग, सुस्वर, दुस्वर, आदेय, अनादेय, यश कीर्ति, अयश कीर्ति, उच्चगोत्र, नीचगोत्र, निर्माण और पाच अतराय इन नवासी प्रकृतियो की जघन्य प्रदेशोदीरणा का स्वामी अति सक्लिष्टपरिणामी पर्याप्त सज्ञी जीव समझना चाहिये।

आहारकसप्तक की उसका उदय वाला तत्प्रायोग्यक्लिष्टपरिणामी (प्रमत्तसयत) जीव, चार आनुपूर्वी की तत्प्रायोग्य सक्लिष्ट परिणामी जीव, आतप की सर्व सक्लिष्ट खर पृथ्वीकायिक एकेन्द्रियजाति, स्थावर और साधारण की सर्वसक्लिष्टपरिणामी बादर एकेन्द्रिय, सूक्ष्मनाम की सूक्ष्म, अपर्याप्तनाम की भव के चरम समय मे वर्तमान अपर्याप्त मनुष्य, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय और चतुरिन्द्रिय जाति का अनुक्रम से सर्व सक्लिष्ट परिणाम वाला और भव के अन्त समय मे वर्तमान द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय और चतुरिन्द्रिय जघन्य प्रदेशोदीरणा का स्वामी जानना चाहिये।

जब तक आयोजिकाकरण की शुरुआत नही हुई होती है तब तक यानि आयोजिकाकरण की शुरुआत होने के पहले तीर्थंकरनाम की जघन्य प्रदेशोदीरणा सयोगिकेवली भगवान करते है।

अवधिज्ञान-दर्शनावरण की जघन्य प्रदेशोदीरणा अवधिज्ञान और अवधिदर्शन वेदक यानि अवधिज्ञान जिसको उत्पन्न हुआ है, ऐसा अति-क्लिष्टपरिणाम वाला करता है। क्योकि अवधिज्ञान उत्पन्न करते बहुत से पुद्गलो का क्षय होता है, इसलिये उसको अनुभव करने वाला यानि कि अवधिज्ञान वाला यहाँ ग्रहण किया है।

चार आयु की जघन्य प्रदेशोदीरणा अपनी-अपनी भूमिका के अनुसार सुखी जीव करता है। उसमे नरकायु की दस हजार वर्ष का आयु वाला नारक करता है। क्योकि जघन्य आयु वाला यह नारक अन्य नारको की अपेक्षा सुखी है तथा शेष तीन आयु की जघन्य प्रदेशो-

दीरणा अपनी-अपनी उत्कृष्ट स्थिति मे वतमान उस-उस आयु का उदय वाला करता है।

उक्त आशय की सग्राहक अन्य कर्तृक गाथा इस प्रकार है—

उक्कोसुदीरणाए सामी सुद्धो गुणियकम्मसो।
इयराअ खविय कम्मो तज्जोगुद्दीरणा किलिट्ठो ॥

अर्थात् शुद्ध परिणाम वाला गुणितकर्मांश जीव उत्कृष्ट प्रदेशोदीरणा का और तत्प्रायोग्य क्लिष्टपरिणाम वाला क्षपितकर्मांश जघन्य प्रदेशोदीरणा का स्वामी है[1]।

इस प्रकार प्रदेशोदीरणा से सबधित विषयो का निर्देश करने के साथ उदीरणाकरण की वक्तव्यता समाप्त हुई।

॥उदीरणाकरण समाप्त ॥

---

१ प्रदेशोदीरणा निरूपक प्रारूप परिशिष्ट मे देखिये।

परिशिष्ट · १

उदीरणाकरण-प्ररूपणा अधिकार

मूल गाथाएँ

ज करणेणोकड्ढिय दिज्जइ उदए उदीरणा एसा ।
पगतिट्ठितिमाइ चउहा मूलुत्तरभेयओ दुविहा ॥१॥

वेयणीय मोहणीयाण होइ चउहा उदीरणाउस्स ।
साइ अधुवा मेसाण साइवज्जा भवे तिविहा ॥२॥

अधुवोदयाण दुविहा मिच्छस्स चउव्विहा तिहणासु ।
मूलुत्तरपगईण भणामि उद्दीरगा एत्तो ॥३॥

घाईण छउमत्था उदीरगा रागिणो उ मोहस्स ।
वेयाऊण पमत्ता सजोगिणो नामगोयाण ॥४॥

उवपरघाय साहारण च इयर तणुइ पज्जत्ता ।
छउमत्था चउदसणनाणावरणतरायाण ॥५॥

तसथावराइतिगतिग आउ गईजातिदिट्ठिवेयाण ।
तन्नामाणूपुव्वीण किंतु ते अन्तरगईए ॥६॥

आहारी उत्तरतणु नरतिरितव्वेयए पमोत्तूण ।
उद्दीरती उरल ते चेव तसा उवग से ॥७॥

आहारी सुरनारग सण्णी इयरेऽनिलो उ पज्जत्तो ।
लद्धीए बायरो दीरगो उ वेउव्वियतणुस्स ॥८॥

तदुवगस्सवि तेच्चिय पवण मोत्तूण केई नर तिरिया ।
आहारसत्तगस्स वि कुणइ पमत्तो विउव्वन्तो ॥९॥

तेत्तीस नामधुवोदयाण उद्दीरगा सजोगीओ ।
लोभस्स उ तणुकिट्टीण होति तणुरागिणो जीवा ॥१०॥

पंचिदिय पज्जत्ता नरतिरिय चउरसउसभपुव्वाण ।
चउरसमेव देवा उत्तरतणुभोगभूमा य ॥१

आइमसघयण च्चिय सेढीमारूढगा उदीरेति ।
इयरे हुण्ड छेवट्ठग तु विगला अपज्जत्ता ॥१

वेउव्वियआहारगउदए न नरावि होंति सघयणी ।
पज्जत्तवायरे च्चिय आयवउद्दीरगो भोमो ॥१३

पुढवीआउवणस्सइ वायर पज्जत्त उत्तरतणू य ।
विगलपणिंदियतिरिया उज्जोवुद्दीरगा भणिया ॥१४

सगला सुगतिसराण पज्जत्तासखवास देवा य ।
इयराण नेरइया नरतिरि सुसरस्स विगला य ॥१५

ऊसासस्स य पज्जत्ता आणुपाणभासासु ।
जा ण निरुम्भइ ते ताव होंति उद्दीरगा जोगी ॥१६॥

नेरइया सुहुमतसा वज्जिय सुहुमा य तह अपज्जत्ता ।
जसकित्तुदीरगाइज्जसुभगनामाण सण्णिसुरा ॥१७॥

उच्चचिय जइ अमरा केई मणुया व नीयमेवण्णे ।
चउगइया दुभगाई तित्थयरो केवली तित्थ ॥१८॥

मोत्तूण खीणराग इदियपज्जत्तगा उदीरति ।
निद्दापयला सायासायाई जे पमत्तत्ति ॥१९॥

अपमत्ताईउत्तरतणू य अस्सखयाउ वज्जेत्ता ।
सेसानिद्दाण सामी सबधगता कसायाण ॥२०॥

हासरईसायाण अतमुहुत्त तु आइम देवा ।
इयराण नेरइया उड्ढ परियत्ताणविहीए ॥२१॥
हासाईछक्कस्स उ जाव अपुव्वो उदीरगा सव्वे ।
उदओ उदोरणा इव ओघेण होइ नायव्वो ॥२२॥
पगइट्ठाणविगप्पा जे सामी होंति उदयमासज्ज ।
तेच्चिय उदीरणाए नायव्वा घातिकम्माण ॥२३॥

मोत्तु अजोगिठाणं सेसा नामस्स उदयवण्णेया ।
गोयस्स य सेसाणं उदीरणा जा पमत्तोत्ति ॥२४॥

पत्तोदयाए इयरा सह वेयइ ठिइउदीरणा एसा ।
वेआवलिया हीणा जावुक्कोसत्ति पाउग्गा ॥२५॥

वेयणियाऊण दुहा चउव्विहा मोहणीय अजहन्ना ।
पंचण्ह साइवज्जा सेसा सव्वेसु दुविगप्पा ॥२६॥

मिच्छत्तस्स चउहा धुवोदयाण तिहा उ अजहन्ना ।
सेसविगप्पा दुविहा सव्वविगप्पा उ सेसाण ॥२७॥

सामित्तद्धाछेया इह ठिइसकमेण तुल्लाओ ।
बाहुल्लेण विसेसं जं जाण ताण तं वोच्छं ॥२८॥

अतोमुहुत्तहीणा सम्मे मिस्संमि दोहि मिच्छस्स ।
आवलिदुगेण हीणा बंधुक्कोसाण परमठिई ॥२९॥

मणुयाणुपुव्विआहारदेवदुगसुहुमवियलतिअगाण ।
आयावस्स य परिवड्ढणमंतमुहुहीणमुक्कोसा ॥३०॥

इयसेसा तित्थठिई पल्लासंखेज्जमेत्तिया जाया ।
तीसे सजोगि पढमे समए उदीरणुक्कोसा ॥३१॥

भयकुच्छआयवुज्जोयसव्वघाईकसाय निद्दाण ।
अतिहीणसंतबंधो जहण्णउद्दीरगो अंतसो ॥३२॥

एगिंदियजोगाणं पडिवक्खा बंधिऊण तव्वेई ।
बंधालिचरमसमये तदागए सेसजाईण ॥३३॥

दुभगाइनीयतिरिदुगअसारसंघयण नोकसायाणं ।
मणुपुव्वऽपज्जतइयस्स सन्निमेवं इगागयगे ॥३४॥

अमणागयस्स चिरठिइअन्ते देवस्स नारयस्स वा ।
तदुवंगगईण आणुपुव्विण तइयसमयंमि ॥३५॥

वेयतिग दिट्ठिदुग संजलणाण च पढमट्ठिईए ।
समयाहिगालियाए सेसाए उवसमे वि दुसु ॥३६॥

एगिंदागय अइहीणसत्त सण्णीसु मीसउदयते ।
पवणो सट्ठिइ जहण्णगसमसत्त विउव्वियस्सते ॥३७॥
चउरुवसमित्तु मोह मिच्छ खविउ सुरोत्तमो होउ ।
उक्कोससजमते जहण्णगाहारगदुगाण ॥३८॥
खीणताण खीणे मिच्छत्तकमेण चोद्दसण्हपि ।
सेसाण सजोगते भिण्णमुहुत्तट्ठिईगाण ॥३९॥
अणुभागुदीरणाए घाइसण्णा य ठाणसन्ना य ।
सुहया विवागहेउ जोत्थ विसेसो तय वोच्छ ॥४०॥
पुरिसित्थिविग्घ अच्चक्खुचक्खुसम्माण इगिदुठाणो वा ।
मणपज्जवपुसाण वच्चासो सेस बधसमा ॥४१॥
देसोवघाइयाण उदए देसो व होइ सव्वो य ।
देसोवघाइओ च्चिय अचक्खुसम्मत्तविग्घाण ॥४२॥
घाय ठाण च पडुच्च सव्वघाईण होई जह बधे ।
अग्घाईण ठाण पडुच्च भणिमो विसेसोऽत्थ ॥४३॥
थावरचउ आयवउरलसत्ततिरिविगलमणुयतियगाण ।
नग्गोहाइचउण्ह एगिंदिउसभाइछण्हपि ॥४४॥
तिरिमणुजोगाण मीसगुरुयखरनर य देवपुव्वीण ।
दुट्ठाणिओच्चिय रसो उदए उद्दीरणाए य ॥४५॥
सम्मत्तमीसगाणं असुभरसो सेसयाण बधुत्त ।
उक्कोसुदीरणा सतयमि छट्ठाणवडिए वि ॥४६॥
मोहणीयनाणावरण केवलिय दसण विरियविग्घ ।
सपुन्नजीवदव्वे न पज्जवेसु कुणइ पाग ॥४७॥
गुरुलहुगाण तपएसिएसु चक्खुस्स सेसविग्घाण ।
जोगेसु गहणधरणे ओहीण रुविदव्वेसु ॥४८॥

सेसाण जह बंधे होइ विवागो उ पच्चओ दुविहो।
भवपरिणामकओ वा निग्गुणसगुणाण परिणइओ ॥४९॥

उत्तरतणुपरिणामे अहिय अहोन्तावि होंति सुसरचुया।
मिउलहु परघाउज्जोय खगइचउरसपत्तेया ॥५०॥

सुभगाइ उच्चगोयं गुणपरिणामा उ देसमाईण।
अइहीणफड्डगाओ अणंतसो नोकसायाण ॥५१॥

जा जंमि भवे नियमा उदीरए ताउ भवनिमित्ताओ।
परिणामपच्चयाओ सेसाओ सइ स सव्वत्थ ॥५२॥

तित्थयर घाईणि य आसज्ज गुणं पहाणभावेण।
भवपच्चइया सव्वा तहेव परिणामपच्चइया ॥५३॥

वेयणिएणुक्कोसा अजहण्णा मोहणीय चउभेया।
सेसघाईण तिविहा नामगोयाणणुक्कोसा ॥५४॥

सेसविगप्पा दुविहा सव्वे आउस्स होउमुवसन्तो।
सव्वट्ठगओ साए उक्कोसुदीरणं कुणइ ॥५५॥

कक्खडगुरुमिच्छाण अजहण्णा मिउलहूणणुक्कोसा।
चउहा साइयवज्जा वीसाए धुवोदयसुभाण ॥५६॥

अजहण्णा असुभधुवोदयाण तिविहा भवे तिवीसाए।
साईअधुवा सेसा सव्वे अधुवोदयाण तु ॥५७॥

दाणाइअचक्खूणं उक्कोसाइंमि हीणलद्धिस्स।
सुहुमस्स चक्खुणो पुण तेइंदिय सव्वपज्जत्ते ॥५८॥

निद्दाण पंचण्हवि मज्झिमपरिणामसंकिलिट्ठस्स।
पणनोकसायसाए नरए जेट्ठट्ठिति समत्तो ॥५९॥

पंचेन्दियतसबायरपज्जत्तगसायसुस्सरगईण।
वेउव्वुस्सासस्स य देवो जेट्ठट्ठिति समत्तो ॥६०॥

सम्मत्तमीसगाण से काले गहिहिइत्ति मिच्छत्ता ।
हासरईण पज्जत्तगस्स सहसारदेवस्स ॥६१॥
गइहुण्डुवघायाणिट्ठखगतिदुसराइणीयगोयाण ।
नेरइओ जेट्ठट्ठिइ मणुआ अते अपज्जस्स ॥६२॥
कक्खडगुरुसघयणा थीपुमसट्ठाणतिरिगईण च ।
पचिंदिओ तिरिक्खो अट्ठमवासेट्ठवासाऊ ॥६३॥
तिगपलियाउ समत्तो मणुओ मणुयगतिउसभउरलाण ।
पज्जत्ता चउगइया उक्कोस सगाउयाण तु ॥६४॥
हस्सट्ठिई पज्जत्ता तन्नामा विगलजाइसुहुमाण ।
थावरनिगोयएगिदियाणमिह बायरा नवर ॥६५॥
आहारतणूपज्जत्तगो उ चउरसमउयलहुयाण ।
पत्तेयखगइपरघायतइयमुत्तीण य विसुद्धो ॥६६॥
उत्तरवेउव्विजई उज्जोयस्सायवस्स खर पुढवी ।
नियगगईण भणिया तइये समएणुपुव्वीण ॥६७॥
जोगन्ते सेसाण सुभाणमियराण चउसुवि गईसु ।
पज्जत्तुक्कडमिच्छेसु लद्धिहीणेसु ओहीण ॥६८॥
सुयकेवलिणो मइसुयचक्खुअचक्खुणुदीरणा मन्दा ।
विपुलपरमोहिगाण मणनाणोहीदुगस्सा वि ॥६९॥

खवगम्मि विग्घकेवलसजलणाण सनोकसायाण ।
सगसगउदीरणते निद्दापयलाणमुवसते ॥७०॥
निद्दानिद्दाईण पमत्तविरए विसुज्झमाणमि ।
वेयगसम्मत्तस्स उ सगखवणोदीरणा चरिमे ॥७१॥
सम्मपडिवत्तिकाले पचण्हवि सजमस्स चउचउसु ।
सम्माभिमुहो मीसे आऊण जहण्णठितिगोत्ति ॥७२॥

पोग्गलविवागियाण भवाइसमये विसेसमुरलस्स ।
सुहुमापज्जो वाऊ बादरपज्जत्त वेउव्वे ॥७३॥

अप्पाऊ बेइंदि उरलगे नारओ तदियरगे ।
निल्लेवियवेउव्वा असण्णिणो आगओ कूरो ॥७४॥

मिच्छोऽन्तरे किलिट्ठो वीसाइ धुवोदयाण सुभियाण ।
आहारजई आहारगस्स अविसुद्धपरिणामो ॥७५॥

अप्पाउ रिसभचउरसगाण अमणो चिरट्ठिइचउण्ह ।
सठाणाण मणूओ सघयणाण तु सुविसुद्धो ॥७६॥

हुण्डोवघायसाहारणाण सुहुमो सुदीह पज्जत्तो ।
परघाए लहुपज्जो आयावुज्जोय तज्जोगो ॥७७॥

छेवट्ठस्स बिइदी बारसवासाउ मउयलहुयाण ।
सण्णि विसुद्धाणाहारगो य पत्तेयमुरलसम ॥७८॥

कक्खडगुरुणमथे विणियट्टे णामअसुहधुवियाण ।
जोगतमि नवण्ह तित्थस्साउज्जियाइमि ॥७९॥

सेसाण वेयतो मज्झिमपरिणामपरिणओ कुणइ ।
पच्चयसुभासुभाविय चितिय णेओ विवागी य ॥८०॥

पचण्हमणुक्कोसा तिहा चउद्धा य वेयमोहाण ।
सेसवियप्पा दुविहा सव्वविगप्पाउ आउस्स ॥८१॥

तिविहा धुवोदयाण मिच्छस्स चउव्विहा अणुक्कोसा ।
सेसविगप्पा दुविहा सव्वविगप्पा य सेसाण ॥८२॥

अणुभागुदीरणाए होति जहन्नसामिणो जे उ ।
जेट्ठपएसोदीरणासामी ते घाइकम्माण ॥८३॥

वेयणियाण पमत्तो अपमत्तत्त जया उ पडिवज्जे ।
सघयणपणगतणुदुगुज्जोयाण तु अपमत्तो ॥८४॥

तिरियगईए देसो अणुपुव्विगईण खाइयो सम्मो ।
दुभगाईनीआण विरइ अब्भुट्ठिओ सम्मो ॥८५॥
देवनिरयाउगाण जहण्णजेट्ठट्ठिई गुरुअसाए ।
इयराऊण इयरा अट्ठमवासेट्ठ वासाऊ ॥८६॥
एगतेण चिय जा तिरिक्खजोग्गाऊ ताण ते चेव ।
नियनियनामविसिट्ठा अपज्जनामस्स मणु सुद्धो ॥८७॥
जोगतुदीरणाण जोगते दुसरसुसरसासाण ।
नियगते केवलीण सव्वविसुद्धस्स सेसाण ॥८८॥
तप्पाओगकिलिट्ठा सव्वाण होति खवियकम्मसा ।
ओहीण तव्वेइ मदाए सुही य आऊण ॥८९॥

□ □

परिशिष्ट २

गाथाओ की अनुक्रमणिका

गाथा	गाथांक	पृष्ठांक
निद्दाण पचण्हवि	५६	८८
निद्दानिद्दाईण पमत्तविरए	७१	१००
नेरइया सुहुमतसा	१७	२०
पगइट्ठाणविगप्पा जे	२३	२६
पत्तोदयाए इयरा	२५	२६
पुढवीआउवणस्सइ	१४	१७
पुरिसित्थिविग्घ अच्चक्खु	४१	६४
पोग्गलविवागियाण	७३	१०३
पचण्हमणुक्कोसा तिहा	८१	११३
पचिंदिय पज्जत्ता नर	११	१५
पचेन्दियतसबायरपज्जत्तग	६०	८६
भयकुच्छआयवुज्जोय	३२	४७
मणुयाणुपुव्विआहारदेवदुग	३०	३६
मिच्छत्तस्स चउहा धुवोदयाण	२७	३३
मिच्छोऽन्तरे किलिट्ठो	७५	१०५
मोत्तु अजोगिठाण	२४	२७
मोत्तूण खीणराग इन्दिय	१६	२१
मोहणीयनाणावरण	४७	७१
वेउव्वियआहारगउदए	१३	१७
वेयणिएणुक्कोसा	५४	८०
वेयणियाऊण दुहा	२६	३१
वेयणियाण पमत्तो	८४	११६
वेयणीए मोहणीयाण	२	४
वेयतिग दिट्ठिदुग	३६	५६
सगला सुगतिसराण	१५	१८
सम्मत्तमीसगाण असुभरसो	४६	६६
सम्मत्तमीसगाण से	६१	६०
सम्मपडिवत्तिकाले	७२	१०१

परिशिष्ट ३

प्रकृत्युदीरणापेक्षा मूल प्रकृतियों की साद्यादि प्ररूपणा . स्वामित्व

प्रकृति नाम	सादि	अध्रुव	अनादि	ध्रुव	स्वामित्व
ज्ञानावरण दर्शनावरण अंतराय	×	भव्य	१२वें गुण. समयाधिक आवलिका शेष तक	अभव्य	क्षीणमोह गुणस्थान तक के
नाम गोत्र	×	,,	१३वें गुण के चरम समय तक	,,	सयोगि केवली गुणस्थान तक के
वेदनीय	अप्रमत्त गुणस्थान से गिरने पर	,,	सादि स्थान अप्राप्त के	,,	प्रमत्त गुणस्थान तक के
मोहनीय	११वें गुण से गिरने पर	,,	,,	,,	दसवें गुणस्थान तक के
आयु	भव के प्रथम समय में अवर्तमान होने से	भव की अन्त्य आवलिका में नहीं होने से	×	×	अचरम आवलिका में वर्तमान प्रमत्तसंयत गुणस्थान तक के

परिशिष्ट : ४

प्रत्युदीरणापेक्षा उत्तर प्रकृतियो की साद्यादि प्ररूपणा स्वामित्व

प्रकृति नाम	सादि	अध्रुव	अनादि	ध्रुव	स्वामित्व
ज्ञानावरण ५ दर्शनावरण ४ अन्तराय ५	×	१२वें गुण समयाधिक आव शेष रहने पर विच्छेद होने से	ध्रुवोदया होने से	अभव्य	क्षीणमोह गुणस्थान तक के जीव
निद्रा, प्रचला	अध्रुवोदया होने से	अध्रुवोदया होने से	×	×	इन्द्रिय पर्या के वाद के समय से ग्यारहवें गुण तक के
स्त्यार्द्धित्रिक	,,	,,	×	×	इन्द्रिय पर्या के वाद के समय से छठें गुणस्थान तक के मनुष्य सख्यात वर्षायुष्क मनुष्य तिर्यंच
मिथ्यात्व	सम्यक्त्व से गिरने पर	भव्य	अनादि मिथ्यात्वी	अभव्य	प्रथम गुणस्थानवर्ती
मिश्रमोह	अध्रुवोदया होने से	अध्रुवोदया होने से	×	×	मिश्र दृष्टि
सम्यक्त्व-मोहनीय	,,	,,	×	×	४-७ गुणस्थान तक के क्षायो सम्यक्त्वी
अनन्ता चतुष्क	,,	,,	×	×	आदि के दो गुणस्थानवर्ती

प्रकृति नाम	सादि	अध्रुव	अनादि	ध्रुव	स्वामित्व
अप्रत्या चतुष्क	अध्रुवो-दया होने	अध्रुवो-दया होने	×	×	आदि के चार गुण-स्थानवर्ती
प्रत्या चतुष्क	„	„	×	×	आदि के पाच गुण-स्थानवर्ती
संज्व. त्रिक	„	„	×	×	नौ गुणस्थानवर्ती स्वबंध विच्छेद तक
संज्व. लोभ	„	„	×	×	दस गुणस्थानवर्ती
हास्यषट्क	„	„	×	×	आठवें गुणस्थान तक
वेदत्रिक	„	„	×	×	नौ गुणस्थानवर्ती
साता वेद असाता वेद.	„		×	×	प्रमत्त गुणस्थान तक के जीव
उच्च गोत्र	„		×	×	१३वें गुणस्थान तक के यथासंभव मनुष्य देव
नीच गोत्र		„	×	×	नारक, तिर्यंच और नीच कुलोत्पन्न मनुष्य चौथे गुणस्थान तक के
नरकायु	„	„	×	×	चरमावलिका बिना के नारक

प्रकृतिनाम	सादि	अध्रुव	अनादि	ध्रुव	स्वामित्व
तिर्यंचायु	अध्रुवो-दया होने	अध्रु-वोदया होने से	×	×	चरमावलिका विना का तिर्यंच
मनुष्यायु	,,	,,	×	×	चरमावलिका विना का प्रमत्तगुण मनुष्य
देवायु	,,	,,	×	×	चरमावलिका विना का देव
नरकगति	,,	,,	×	×	नारक
देवगति	,,	,,	×	×	देव
तिर्यंचगति	,,	,,	×	×	तिर्यंच
मनुष्यगति	,,	,,	×	×	सयोगी गुणस्थान तक मनुष्य
एकेन्द्रिय जाति	,,	,,	×	×	एकेन्द्रिय
विकलेन्द्रिय जाति त्रिक	,,	,,	×	×	विकलेन्द्रियत्रिक
पचेन्द्रिय त्रस चतुष्क	,,	,,	×	×	सयोगी गुणस्थान तक के जीव परन्तु प्रत्येक शरीरस्थ
औदारिक सप्तक	,,	,,	×	×	यथासभव सयोगिगुण तक के मनुष्य, तिर्यंच
वैक्रिय षट्क	,,	,,	×	×	देव, नारक, उत्तर वैक्रियशरीरी मनुष्य तिर्य[illegible]

प्रकृति नाम	सादि	अध्रुव	अनादि	ध्रुव	स्वामित्व
वैक्रिय-अगो.	अध्रुवो दया	अध्रुवो-दया	×	×	वायुकाय बिना पूर्वोक्त
तैजससप्तक, वर्णादि बीस, अगुरुलघु, निर्माण, अस्थिर, अशुभ	×	१२वें गुण मे विच्छेद होने से	ध्रुवो-दया होने से	अभव्य	सयोगि-गुणस्थान तक के जीव
आहारक सप्तक	अध्रुवो दया	अध्रुवो-दया	×	×	आहारक शरीरी मुनि
वज्रऋषभ नाराच सहनन	"	"			उत्पत्ति स्थान के प्रथम समय से १३वें गुणस्थान तक के यथा-सभव पर्याप्त मनुष्य, तिर्यंच पचेन्द्रिय
मध्यम सहृ चतुष्क	"	"	×	×	उत्पत्ति स्थान के प्रथम समय से सातवें गुणस्थान तक के यथा-सभव मनुष्य, तिर्यंच पचेन्द्रिय
सेवार्त सहृ	"	"	×	×	उत्पत्ति स्थान के प्रथम समय से यथासभव सातवेंगुणस्थान तक के मनुष्य, पचेन्द्रिय तिर्यंच, विकलेन्द्रिय
समचतु सस्थान	"	"	×	×	शरीरस्थ देव, युगलिक उत्तर-शरीरी सज्ञी, कितनेक पर्याप्त मनुष्य तिर्यंच पचेन्द्रिय

प्रकृति नाम	सादि	अध्रुव	अनादि	ध्रुव	स्वामित्व
मध्यम संस्थान चतुष्क	अध्रुवोदया होने से	अध्रुवोदया होने से	×	×	शरीरस्थ कितनेक पर्याप्त मनुष्य तिर्यंच पंचेन्द्रिय
हुंडक संस्थान	"	"	×	×	शरीरस्थ नारक, असंज्ञी लब्धि-अपर्याप्त, कितनेक पर्याप्त संज्ञी मनुष्य तिर्यंच
आनुपूर्वी चतुष्क	"	"	×	×	विग्रहगतिवर्ती तत्तत् गतिवाले देव, नारक, मनुष्य, तिर्यंच
अशुभ विहायोगति	"	"	×	×	शरीर पर्याप्ति से पर्याप्त नारक विकलेन्द्रिय और स्वोदय वाले पंचेन्द्रिय-तिर्यंच-मनुष्य
शुभ विहायोगति	"	"	×	×	शरीर पर्याप्ति से पर्याप्त देव, युगलिक, स्वोदयवर्ती पर्याप्त मनुष्य, तिर्यंच
आतप	"	"	×	×	शरीर पर्याप्ति से पर्याप्त खरबादर पृथ्वीकाय

प्रकृतिनाम	सादि	अध्रुव	अनादि	ध्रुव	स्वामित्व
उद्योत	अध्रु-वोदया	अध्रुवो-दया	×	×	सूक्ष्म, लब्धि-अपर्याप्त तेज, वायु बिना तिर्यंच और उत्तर शरीरी देव, पचे तिर्यंच व मुनि
उपघात	,,	,,	×	×	शरीरस्थ सयोगि गुण-स्थान तक के सभी
पराघात	,,	,,	×	×	लब्धि पर्याप्त शरीर पर्याप्ति से पर्याप्त सयोगि गुणस्थान तक के सभी
तीर्थंकर नाम	,,	,,	×	×	तीर्थंकर केवली सयोगी
स्थिर, शुभ	×	१२वें गुण में विच्छेद होने से	ध्रुवोदया	अभव्य	सयोगि गुणस्थान तक के
सुभग, आदेय	अध्रु-वोदया	अध्रुवो-वया	×	×	स्वोदयवर्ती गर्भज पर्याप्त तिर्यंच, मनुष्य, देव
यश कीर्ति	,,	,,	×	×	तेज, वायु, सूक्ष्म, लब्धि अपर्याप्त और नारक विना स्वोदय-वर्ती जीव
सुस्वर	,,	,,	×	×	भाषा पर्याप्ति से पर्याप्त देव और स्वोदयवर्ती त्रस

प्रकृतिनाम	सादि	अध्रुव	अनादि	ध्रुव	स्वामित्व
स्थावर	अध्रुवोदया	अध्रुवोदया	×	×	स्थावर
सूक्ष्म, साधारण	,,	,,	×	×	क्रमश सूक्ष्म और शरीरस्थ साधारण जीव
अपर्याप्त	,,	,,	×	×	लब्धि अप मनुष्य तिर्यंच
दुर्भग, अनादेय	,,	,,	×	×	नारक लब्धि अप स्वोदयवर्ती गर्भज तिर्यंच, मनुष्य, देव, विकलेन्द्रिय, एकेन्द्रिय
अयश कीर्ति	,,	,,	×	×	तेज, वायु नारक, सूक्ष्म, लब्धि अपर्याप्त और स्वोदयवर्ती शेष जीव
दु स्वर	,,	,,	×	×	भाषा पर्याप्ति से पर्याप्त नारक, स्वोदयवर्ती मनुष्य, तिर्यंच

□

परिशिष्ट ५

स्थित्युदीरणापेक्षा मूल प्रकृतियो की साद्यादि प्ररूपणा का प्रारूप

प्रकृति नाम	जघन्य	उत्कृष्ट	अजघन्य	अनुत्कृष्ट
ज्ञानावरण	मादि अध्रुव	सादि अध्रुव	अनादि ध्रुव अध्रुव	सादि अध्रुव
दर्शनावरण	,,	,,	अध्रुव ध्रुव अनादि	,,
वेदनीय	,,	,,	सादि, अध्रुव	,,
मोहनीय	,,	,,	सादि, अनादि ध्रुव, अध्रुव	,,
आयु	,,	,,	सादि अध्रुव	,,
नाम, गोत्र	,,	,,	अनादि, ध्रुव अध्रुव	,,
अतगय	,,	,,	,,	,,

परिशिष्ट . ६

स्थित्युदीरणापेक्षा उत्तर प्रकृतियो की साद्यादि प्ररूपणा का प्रारूप

प्रकृति नाम	जघन्य स्थिति	उत्कृष्ट स्थिति	अजघन्य स्थिति	अनुत्कृष्ट स्थिति
ज्ञानावरणपचक दर्शनावरणचतुष्क अतरायपचक	सादि, अध्रुव	सादि, अध्रुव	अनादि, ध्रुव, अध्रुव	सादि, अध्रुव
निद्रा, प्रचला	,,	,,	सादि, अध्रुव	,,
स्त्यानर्द्धित्रिक	,,	,,	,,	,,
मिथ्यात्वमोह	,,	,,	सादि, अनादि, ध्रुव, अध्रुव	,,
मिश्रमोह	,,	,,	सादि, अध्रुव	
सम्यक्त्वमोह	,,	,,	,,	,,
अनन्ता अप्रत्या प्रत्याख्यान चतुष्क, सज्व त्रिक	,,	,,	,,	,,
सज्वलन लोभ हास्य, रति, शोक, अरति, भय, जुगुप्सा वेदत्रिक	,,	,,	,,	,,
वेदनीयद्विक गोत्रद्विक आयुचतुष्क	,,	,,	,,	,,

प्रकृति नाम	जघन्य स्थिति	उत्कृष्ट स्थिति	अजघन्य स्थिति	अनुत्कृष्ट स्थिति
गतिचतुष्क जातिपंचक त्रसचतुष्क औदारिकसप्तक वैक्रियसप्तक	सादि, अध्रुव	सादि, अध्रुव	सादि, अध्रुव	सादि, अध्रुव
तैजससप्तक वर्णादिबीस, अगुरुलघु, निर्माण, अस्थिर, अशुभ	"	"	अनादि, ध्रुव, अध्रुव	"
आहारकसप्तक	"	"	सादि, अध्रुव	"
संस्थानषट्क	"	"	"	"
संहननषट्क	"	"	"	"
आनुपूर्वीचतुष्क	"	"	"	"
विहायोगतिद्विक	"	"	"	"
आतप, उद्योत	"	"	"	"
उपघात, पराघात	"	"	"	"
उच्छ्वासनाम	"	"	"	"
तीर्थंकरनाम	"	"	"	"

प्रकृति नाम	जघन्य स्थिति	उत्कृष्ट स्थिति	अजघन्य स्थिति	अनुत्कृष्ट स्थिति
स्थिर, शुभ	सादि, अध्रुव	सादि, अध्रुव	अनादि, ध्रुव अध्रुव	सादि, अध्रुव
सुभग, आदेय	सादि, अध्रुव	सादि, अध्रुव	सादि, अध्रुव	सादि, अध्रुव
यश कीर्ति, सुस्वर	"	"	"	"
स्थावरचतुष्क	"	"	"	"
दुर्भग, अनादेय, अयश कीर्ति दु स्वर	"	"	"	"

परिशिष्ट : ७

मूल प्रकृतियो का स्थिति उदीरणा प्रमाण एव स्वामित्व

प्रकृति नाम	उत्कृष्ट स्थिति	जघन्य स्थिति	उत्कृष्ट स्थिति स्वामित्व	जघन्य स्थिति स्वामित्व
ज्ञानावरण दर्शनावरण	आव द्विकन्यून ३० को को सागर	१ समय	अति सक्लि मिथ्या सज्ञी पर्याप्त	समयाधिक आव शेष क्षीणमोही
वेदनीय	आव द्विकन्यून ३० को को सागर	साधिक पल्यो अस-भाग न्यून ३/७ सागर	,,	जघन्य स्थिति वाला एकेन्द्रिय
मोहनीय	आव द्विकन्यून ७० को को सागर	१ समय	,,	समयाधिक आव शेष क्षपक सूक्ष्म सपरायी
आयु	आवलिकान्यून ३३ सागर	,,	उत्कृष्टस्थिति वाला भवाद्य समयवर्ती देव, नारक	समयाधिक आव शेष आयुवाले सभी
नाम, गोत्र	आव द्विकन्यून २० को को सागर	अन्तर्मुहूर्त [illegible]	अति सक्लिष्ट मिथ्यात्वी पर्याप्त सज्ञी	चरम समयवर्ती सयोगि
अतराय	आव द्विकन्यून ३० को को सागर	१ समय	,,	समयाधिक आव शेष क्षीणमोही

परिशिष्ट : ८

उत्तरप्रकृतियो का स्थिति उदीरणा प्रमाण एव स्वामित्व

प्रकृति नाम	उत्कृष्ट स्थिति	जघन्य स्थिति	उत्कृष्ट स्वा	जघन्य स्वामी
ज्ञानावरण पचक, दशना चतुष्क, अत-रायपचक	आव द्विकन्यून ३० को को सागर	१ समय	अति स० पर्याप्त पचेन्द्रिय मिथ्यात्वी	समयाधिक आव शेष क्षीणमोही
निद्राद्विक	अन्त न्यून ३० को को	पल्यो का अस भाग न्यून ३/७ सा	पर्याप्त सज्ञी पचेन्द्रिय मिथ्यात्वी	बधावलिका के अन्त मे ज स्थिति सत्तावाला एकेन्द्रिय
स्त्यानर्द्धि त्रिक	,,	,,	पर्याप्त सज्ञी पचे मिथ्या मनुष्य, तिर्यच	,,
मिथ्यात्वमोह	आव द्विक न्यून ७० को को सागर	१ समय	पर्याप्त सज्ञी पचेन्द्रिय मिथ्यात्वी	मिथ्यात्व की प्रथम स्थिति समयाधिक आव शेष मिथ्यात्वी
मिश्रमोह	[illegible]	पल्यो अस भाग न्यून १ सागर	मिश्रदृष्टि	एके समान ज स्थि वाला एके मे से आगत स पचे मिश्रदृष्टि
सम्यक्त्व-मोह	एक अन्त न्यून ७० को को सागर	१ समय	क्षयोपशम सम्यक्त्वी	क्षायक सम्यक्त्व प्राप्त करने वाला आव शेष ४-७ गुण वाले यथा सभव चारो गति के वेदक सम्यक्त्वी
आद्य बारह कषाय	आव द्विक न्यून ४० को को सागर	आव द्विक अधिक पल्यो अस भाग न्यून ४/७ सागर	पर्याप्त सज्ञी पचेन्द्रिय मिथ्यात्वी	बधावलिका के अत मे जघन्य स्थिति सत्ता वाला एकेन्द्रिय

प्रकृतिनाम	उ स्थि	ज स्थि	उ स्वा	ज स्वा
असाता वेद	आव द्विक न्यून ३० को को सागर	आव द्विक अधिक अत मुं सह पल्यो अस भाग न्यून ३/७ सा	पर्याप्त सज्ञी पचेन्द्रिय मिथ्यात्वी	जघ स्थि सत्ता वाला एकेन्द्रिय मे से आगत सज्ञी बधावलिका के चरम समय
उच्च गोत्र	आव त्रिक न्यून २० को को सागर	अतर्मुहूर्त	पर्याप्त सज्ञी मिथ्यात्वी देव और कुछ मनुष्य	चरम समयवर्ती सयोगि
नीचगोत्र	आव द्विक न्यून २० को को सागर	आव द्विक अधिक अतर्मु सहित पल्यो अस भाग न्यून २/७ सागर	पर्याप्त सज्ञी मिथ्या तिर्यच मनुष्य नारक और नीच कुलोत्पन्न मनुष्य	जघ स्थि सत्ता वाला एकेन्द्रिय से आगत स्त्र बधावलिका का चरम समय सज्ञी
नरकायु	आव न्यून ३३ सागर	१ समय	भवाद्य समय वर्ती उ स्थिति वाला नारक	समयाधिक आव शेष नारक
तिर्यचायु	आव न्यून ३ पल्य	१ समय	भवाद्य समय वर्ती उ स्थि वाला तिर्यंच	समयाधिक आव शेष तिर्यच
मनुष्यायु	"	"	भवाद्य समय वर्ती उ स्थि वाला मनुष्य	समयाधिक आव शेष मनुष्य

प्रकृतिनाम	उ स्थि	ज स्थि	उ स्वा	ज स्वा
देवायु	आव न्यून ३३ सागर	१ समय	भवाद्य समयवर्ती उ स्थि वाला देव	समयाधिक आव शेप देव
नरकगति	आव अधिक अन्त न्यून २० को को सागर	साधिक पल्यो के दो असं भाग न्यून २/७ सागर	भवाद्य समयवर्ती पाचवें आदि तीन नरको के नारक मिथ्या	अल्पकाल बाध दीर्घायु वाला असज्ञी मे से आगत चरम समय वर्ती उ स्थि वाला नारक
देवगति	,,	,,	भवाद्य समयवर्ती मिथ्यात्वी देव	अल्पकाल बाध दीर्घायु वाला असज्ञी मे से आगत चरम समय वर्ती उ स्थिति वाला देव
तिर्यंचगति	आव त्रिक न्यून २० को को सागर	आव द्वि अधिक अन्त सहित पल्यो अस भाग न्यून २/७ सागर	भवाद्य समयवर्ती मिथ्यात्वी तिर्यंच	लघु स्थिति वाला एकेन्द्रिय मे से आगत पर्याप्तिका के चरम समयवर्ती सज्ञी तिर्यंच
मनुष्यगति	,,	अन्तर्मुहूर्त	मिथ्यात्वी मनुष्य	चरम समयवर्ती सयोगि
एकेन्द्रिय जाति	साधिक आव अन्तम न्यून २० को को सागर	आव त्रि अधिक चार अन्त सहित पल्यो अस भाग न्यून २/७ सागर	भवाद्य समयवर्ती मिथ्या [illegible]	लघु स्थिति सत्ता वाला यथाव के चरम समय [illegible]

प्रकृतिनाम	उ स्थि	ज स्थि	उ स्वा	ज स्वा
विकले जाति	आव द्विक अधिक अन्त न्यून २० को को सागर	आव द्विक अधिक चार अन्त सहित पल्यो अस भाग न्यून २/७ सागर	भवाद्य समयवर्ती यथासभव विकलेन्द्रिय मिथ्यादृष्टि	ज स्थिति वाला एके मे से आगत वधाव के चरम समय यथा सभव द्वीन्द्रियादि
पचे जाति त्रसचतुष्क	आव द्विक न्यून २० को को सागर	अन्तमुहूर्त	मिथ्या पर्याप्त सज्ञी	चरम समयवर्ती सयोगि
औदारिक सप्तक	साधिक आव न्यून २० को को सागर	,,	मिथ्या पर्या भवाद्य समय तिर्यंच	,,
वैक्रिय षट्क	आव द्विक न्यून २० को को सागर	साधिक पल्यो अस भाग न्यून २/७ सागर	मिथ्या उत्तर वै शरीरी मनुष्य तिर्यंच सज्ञी	चरम वैक्रिय शरीरी बादर पर्याप्त वायुकाय
वैक्रिय अगोपाग	,,	साधिक दो पल्यो अस भाग न्यून २/७ सागर	,,	
तैजस सप्तक वर्णादि बीस अगुरुलघु निर्माणअस्थिर अशुभ	,,	अन्तमु	मिथ्या पर्याप्त सज्ञी	चरम समय वर्ती सयोगि

प्रकृति नाम	उ स्थि	ज स्थि	उ स्वा	ज स्वा
आहारक सप्तक	अतमु न्यून अत को को सागर	सातवें गुणस्थान मे सभव जघन्य अन्त को को सागर	प्रथम समय वर्ती आहारक शरीरी प्रमत्तमुनि	चरम भवी आहारक शरीरी चरम समय वर्ती मुनि
वज्रऋषभ-नाराच सहनन	तीन आव न्यून २० को को. सागर	अन्तर्मुहूर्त	मिथ्यादृष्टि पर्या सज्ञी मनुष्य, तिर्यच	चरम समयवर्ती सयोगि
मध्यम सह चतुष्क	,,	आव द्विक अधिक पाच अन्त सहित पल्यो अ भा न्यून २/७ सा	,,	जघन्य स्थिति सत्ता-वाला एके मे से आगत स्वबध आव चरम समयवर्ती सज्ञी
सेवार्त सहनन	आवलिका-धिक अन्त न्यून २० को को सागर	,,	उत्पत्तिस्थान के प्रथम समय मे मि पर्या. सज्ञी तिर्यंच	,,
समचतुरस्र-सस्थान	आवलिका धिक न्यून २० को को सागर	अन्तर्मुहूर्त	नारक विना मिथ्या सर्व पर्याप्ति से पर्याप्त	चरम समय वर्ती सयोगि
मध्यमसस्थान चतुष्क	,,	,,	सर्वपर्याप्ति से पर्या मिथ्या सज्ञी मनुष्य तिर्यंच	

प्रकृतिनाम	उ स्थि	ज स्थि	उ स्थि स्वा	ज. स्थि स्वा
हुडक सस्थान	आवलिका द्विक न्यून २० को को सागर	अन्तर्मुहूर्त	मिथ्या नारक कुछ सपूर्ण पर्याप्त सज्ञी मनुष्य तिर्यच	चरम समय वर्ती सयोगि
नरकानु-पूर्वी	साधिक आव अन्त न्यून २० को को सागर	साधिक पल्यो अस भाग न्यून २/७ सागर	विग्रह गति प्रथम समय वर्ती धूम्र प्रभादि तीन नरक	अल्पकाल बाधकर दीर्घायु असज्ञी मे से आगत विग्रहगति तृतीय समयवर्ती नारक
देवानुपूर्वी	,,	,,	विग्रहगति प्रथम समय वर्ती देव	पूर्वोक्त प्रकार का जीव किन्तु देव
तिर्यंचानु-पूर्वी	,,	आव द्विक अधिक पल्यो अस भाग न्यू २/७ सागर	विग्रह गति प्रथम समय वर्ती मिथ्या तिर्यंच	जघन्य स्थिति सत्ता वाला एके मे से आगत विग्रह गति तृतीय समयवर्ती सज्ञी तिर्यच
मनुष्यानु-पूर्वी	,,	,,	वि गति प्रथम समय वर्ती मिथ्या पर्या गर्भज मनुष्य	पूर्वोक्त प्रकार का जीव, किन्तु मनुष्य
अशुभविहायो गति	आव द्विक न्यून २० को को सागर	अन्तर्मुहूर्त	मिथ्या ,नारक और स्वोदय वर्ती मनुष्य तिर्यंच	चरम समयवर्ती सयोगि
शुभविहायो गति	आव त्रिक न्यून २० को को सागर	,,	मिथ्या देव स्वोदयवर्ती मनुष्य तिर्यंच	

प्रकृतिनाम	उ स्थि	ज स्थि	उ स्थि स्वा	ज स्थि स्वा
आतप	आव अधिक अन्त न्यून २० को को सागर	आव द्विक अधिक पल्यो अस भाग यून २/७ सागर	शरीर पर्याप्ति से पर्याप्त प्रथम समय मे खर बादर पृथ्वीकाय	जघन्य स्थिति सत्ता वाला शरीर पर्याप्ति-पर्याप्त खर पृथ्वीकाय
उद्योत	आव द्विक न्यून २० को को सागर	,,	उत्तर शरीरी देव	जघन्य स्थिति सत्ता वाला शरीर पर्याप्ति से पर्याप्त स्वोदय वर्ती एकेन्द्रिय
उपघात	,,	अन्तर्मुहूर्त	मिथ्या पर्याप्त सज्ञी पचेन्द्रिय	चरम समय वर्ती सयोगी
पराघात	,,	,,	,,	,,
उच्छ्वास	,,	,,	,,	स्वनिरोध चरम समयवर्ती सयोगि
तीर्थंकर	पल्यो का अस भाग	,,	स्वयोग्य उ स्थि स वाला प्रथ समयवर्ती तीर्थ केवली	चरम समयवर्ती सयोगी जिन केवली
निर्मा शुभ	आव त्रिक न्यून २० को को सागर	,,	मिथ्यादृष्टि पर्याप्त सज्ञी पचेन्द्रिय	चरम समयवर्ती सयोगि

प्रकृतिनाम	उ स्थि	ज स्थि	उ स्थि स्वा	ज स्थि र
सुभग, आदेय	आव त्रिक न्यून २० को को सागर	अन्तर्मुहूर्त	स्वोदयवर्ती मिथ्या पर्याप्त गभज तिर्यंच मनु और देव	चरम समय सयोगि
यश कीर्ति	,,	,,	नारक रहित स्वोदयवर्ती मिथ्या पर्याप्त सज्ञी	,,
सुस्वर	,,	,,	मिथ्या देव और स्वोदय गभज तिर्यंच मनुष्य	स्वर निरो समयवर्ती
स्थावर	साधिक आव अन्त न्यून २० को को सागर	आव द्विक अधिक अत सहित पल्यो अस भाग न्यून २/७ सागर	भवाद्य समय वर्ती मिथ्या लब्धि-पर्याप्त वादर एके	जघन्य स्थि सत्ता वाला स्ववध आव चरम समय स्थावर
सूक्ष्म, साधारण	आव द्विक अधिक अत न्यून २० को को सागर	,,	क्रमश सूक्ष्म और साधारण भवाद्य समय वर्ती	जघन्य स्थिति सत्ता वाला स्ववधावलिका का चरम समय वर्ती क्रमश सूक्ष्म और साधारण

प्रकृतिनाम	उ स्थि	ज स्थि	उ स्थि स्वा	ज स्थि स्वा.
अपर्याप्त	आव द्विक अधिक अत न्यून २० को को सागर	आव द्विक अधिक अत. सहित पल्यो अस भाग न्यून २/७ सागर	भवाद्य समय वर्ती लब्धि-अपर्याप्त	जघन्य स्थिति सत्ता वाला एकेन्द्रिय मे से आगत स्वबधावलिका चरम समयवर्ती अपर्याप्त सज्ञी
दुर्भग, अनादेय	आव द्विक न्यून २० को. को सागर	,,	मिथ्या नारक और स्वोदय वर्ती गर्भज पर्याप्त तिर्यंच मनु और देव	अपर्याप्त बिना पूर्वोक्त प्रकार का सज्ञी
अयशःकीर्ति	,,	,,	मिथ्या स्वोदयवर्ती पर्याप्त सज्ञी	,,
दु स्वर	,,	अन्तर्मुहूर्त	,,	स्वर निरोध चरम समयवर्ती सयोगी

परिशिष्ट ६

अनुभागोदीरणापेक्षा मूल प्रकृतियो की साद्यादि प्ररूपणादर्शक प्रारूप

प्रकृति नाम	जघन्य	उत्कृष्ट	अजघन्य	अनुत्कृष्ट
ज्ञानावरण दर्शनावरण	सादि अध्रुव	सादि, अध्रुव	अनादि, ध्रुव, अध्रुव	सादि, अध्रुव
वेदनीय	,,	,,	सादि, अध्रुव	सादि, अनादि, ध्रुव अध्रुव
मोहनीय	,,	,,	सादि, अनादि, ध्रुव, अध्रुव	सादि, अध्रुव
आयु	,,	,,	सादि, अध्रुव	,,
नाम, गोत्र	,,	,,	,,	अनादि, ध्रुव, अध्रुव
अतराय	,,	,,	अनादि, ध्रुव, अध्रुव	सादि, अध्रुव

परिशिष्ट : १०

अनुभागोदीरणापेक्षा उत्तरप्रकृतियो की साद्यादि प्ररूपणादर्शक प्रारूप

प्रकृति नाम	जघन्य	उत्कृष्ट	अजघन्य	अनुत्कृष्ट
ज्ञानावरण पचक, दर्शनावरण चतुष्क	सादि, अध्रुव	सादि, अध्रुव	अनादि, ध्रुव, अध्रुव	सादि, अध्रुव
निद्रापचक	,,	,,	सादि, अध्रुव	,,
दानान्तरादि अन्तराय पचक	,,	,,	अनादि, ध्रुव, अध्रुव	,,
मिथ्यात्वमोह	,,	,,	सादि, अनादि, ध्रुव, अध्रुव	,,
मिश्र, सम्यक्त्वमोहनीय अनन्तानुबधि आदि सोलह कषाय नव नोकषाय	,,	,,	सादि, अध्रुव	,,
वेदनीयद्विक, आयुचतुष्क, गोत्रद्विक	,,	,,	,,	,,
गतिचतुष्क जातिपचक औदारिक सप्तक, वैक्रिय सप्तक आहारक सप्तक	,,	,,	,,	,,

प्रकृतिनाम	जघन्य	उत्कृष्ट	अजघन्य	अनुत्कृष्ट
तैजस सप्तक अगुरुलघु, निर्माण, मृदु-लघुविना शुभ वर्ण नवक स्थिर, शुभ	सादि, अध्रुव	सादि,अध्रुव	सादि, अध्रुव	अनादि, ध्रुव, अध्रुव
सहनन षट्क	,,	,,	,,	सादि, अध्रुव
सस्थान षट्क	,,	,,	,,	,,
मृदु, लघु स्पर्श	,,	,,	,,	सादि, अनादि, ध्रुव, अध्रुव
गुरु, कर्कश स्पर्श	,,	,,	सादि,अनादि, ध्रुव, अध्रुव	सादि, अध्रुव
गुरु, कर्कश विना अशुभ वर्ण सप्तक, अस्थिर,अशुभ	,,	,,	अनादि, ध्रुव, अध्रुव	,,
आनुपूर्वी चतुष्क	,,	,,	सादि, अध्रुव	,,
विहायो गतिद्विक	,,	,,	,,	,,

प्रकृति नाम	जघन्य	उत्कृष्ट	अजघन्य	अनुत्कृष्ट
उपघात, पराघात आतप, उद्योत उच्छ्वास, तीर्थंकर नाम, त्रस चतुष्क	सादि, अध्रुव	सादि, अध्रुव	सादि, अध्रुव	सादि, अध्रुव
सुभग, आदेय यश कीर्ति, सुस्वर	सादि, अध्रुव	सादि, अध्रुव	सादि, अध्रुव	सादि, अध्रुव
स्थावरचतुष्क	"	"	"	"
दुर्भग चतुष्क	"	"	"	"

———

परिशिष्ट : ११

अनुभागोदीरणापेक्षा मूलप्रकृतियो का घातित्व स्वामित्व दर्शक प्रारूप

प्रकृति नाम	घा स्था आश्रयी उत्कृष्ट	घा स्था आश्रयी जघन्य	विपाकी	उ स्वा	ज स्वा
ज्ञानावरण दर्शनावरण	सर्वघाति चतु स्था	सर्वघाति द्वि स्था	जीव वि	अति सक्लि मिथ्यात्वी पर्याप्त सज्ञी	समयाधिक आव शेष क्षीणमोही
वेदनीय	सर्वघाति प्रति भाग चतु स्था	सर्वघाति प्रति भाग द्वि स्था	,,	उत्कृष्टस्थिति वाला पर्याप्त अनुत्तर वासी	परावर्तन मध्यम परिणामी मिथ्यादृष्टि
मोहनीय	सर्वघाति चतु स्था	देशघाति एक स्था	,,	अति स मिथ्यात्वी पर्याप्त सज्ञी	समयाधिक आव शेष क्षपक सूक्ष्म सपरायी
आयु	सर्वघाति प्रतिभाग चतु स्था	सर्वघाति प्रति भाग द्वि स्था	भव विपाकी	उ स्थि वाला भवाद्य समयवर्ती	समयाधिक आव शेष आयु वाला
नाम, गोत्र	,,	,,	क्रमश भव बिना तीन जीव विपाकी	चरम समय वर्ती सयोगी	परा मध्यम परिणामी मिथ्यादृष्टि
अतराय	देशघाति द्वि स्थान	देशघाति एक स्था	जीव विपाकी	सर्वाल्प लब्धि-वत भवाद्य समयवर्ती अप सूक्ष्म एके	समयाधिक आवलिका शेष क्षीणमोही

परिशिष्ट : १२

अनुभागोदीरणापेक्षा उत्तर प्रकृतियों की घाति, स्थान एवं विपाकित्व प्ररूपणा दर्शक प्रारूप

प्रकृति नाम	घाति उत्कृष्ट अनु उदी	घाति जघन्य अनु उदी.	स्थान उत्कृष्ट अनु उदी	स्थान जघन्य अनु उदी	विपाकी
मति-श्रुता-वरण	सर्वघाति	देशघाति	चतु स्था	एक स्थान	जीवविपाकी कितनीक पर्याय-सहित सर्व जीव द्रव्य
अवधिद्विक. आवरण	,,	,,	,,	,,	जीवविपाकी रूपी द्रव्य मे
मनपर्याय ज्ञानावरण	,,	,,	,,	द्वि. स्था	जीवविपाकी कितनीक पर्याय सहित सर्व जीव द्रव्य
केवलद्विक-आवरण	,,	सर्वघाति	,,	,,	,,
चक्षुदर्शनावरण	,,	देशघाति	द्वि. स्था	एक स्थान	जीवविपाकी गुरु लघु अनन्त प्रदेशी स्कन्ध मे
अचक्षुदर्शनावरण	देशघाति	,,	,,	,,	,,
निद्रा, पचला	सर्वघाति	सर्वघाति	चतु स्था	द्वि स्था	जीवविपाकी

प्रकृति नाम	घाति उ अनु उ	घाति ज अनु उ	स्थान उ अनु उदी	स्थान ज अनु उदी	विपाकी
स्त्यानर्द्धित्रिक	मर्वघाति	सर्वघाति	चतु स्था	द्वि स्था	जीवविपाकी
दानान्तराय चतुष्क	देशघाति	देशघाति	द्वि स्था	एक स्थान	जीवविपाकी सर्व द्रव्य का अनन्तवा भाग
वीर्यान्तराय	,,	,,	,,	,,	जीवविपाकी कितनीक पर्याय सहित सर्व जीव द्रव्य
मिथ्यात्वमोह	सर्वघाति	सर्वघाति	चतु स्था	द्वि स्था	,,
मिश्रमोह	,,	,,	द्वि स्था	,,	,,
सम्यक्त्वमोह	देशघाति	देशघाति	,,	एक स्थान	,,
आद्य द्वादश कषाय	सर्वघाति	सर्वघाति	चतु स्था	द्वि स्था	जीव वि कितनीक पर्याय सहित सर्व जीव द्रव्य
सज्व चतुष्क	,,	देशघाति	,,	एक स्थान	,,
हास्यपट्क	,,	,,	,,	द्वि स्था	,,
नपु सकवेद	,,	,,	,,	एक स्थान	,,
स्त्री, पुरुप वेद	,,	,,	द्वि स्था	,,	,,
वेदनीयद्विक	सर्वघाति प्रतिभाग	सवघाति प्रतिभाग द्वि स्था	चतु स्था.	द्वि स्था	जीवविपाकी

प्रकृति नाम	घाति उ अनु उ	घाति ज अनु उ	स्थान उ.अनु उ	स्थान ज अनु उ	विपाकी
गोत्रद्विक	सर्वघाति प्रतिभाग	सर्वघाति प्रतिभाग द्वि स्था	चतु स्थान	द्वि स्था	जीवविपाकी
नरक-देव आयु	,,	,,	,,	,,	भवविपाकी
तिर्यंच-मनुष्य आयु	,,	,	द्वि स्था	,,	,,
नरक, देव गति	,,	,,	चतु स्थान	,,	जीवविपाकी
तिर्यंच मनुष्य गति	,,	,,	द्वि स्था	,,	,,
एकेन्द्रिय आदि जाति चतुष्क	,,	,,	,,	,,	,,
पचेन्द्रिय जाति	,,	,,	चतु स्थान	,,	,,
औदारिक सप्तक	,,	,,	द्वि. स्था	,,	पुद्गलविपाकी
वैक्रिय सप्तक	,,	,,	चतु स्थान	,,	,,
आहारक सप्तक	,,	,,	,,	,,	,,
तैजस सप्तक अगुरलघु, निर्माण, मृदुलघु विना शुभ वर्ण नवक, स्थिर, शुभ	सर्वघाति प्रतिभाग	,,	,,	,,	,,

प्रकृति नाम	घाति उ अनु उ	घाति ज अनु उ	स्थान उ अनु उ	स्थान ज अनु उ	विपाकी
संहननषट्क	सर्वघाति प्रतिभाग	सर्वघाति प्रतिभाग	द्वि स्था	द्वि स्था	पुद्गलविपाकी
मध्यम संस्थान चतुष्क	,,	,,	,,	,,	,,
आदि, अंतिम संस्थान	,,	,,	चतु स्थान	,,	,,
मृदु-लघुस्पर्श	,,	,,	,,	,,	,,
गुरु, कर्कश स्पर्श	,,	,,	द्वि. स्था	,,	,,
गुरु-कर्कश बिना अशुभवर्णसप्तक अस्थिर, अशुभ	,,	,,	चतु स्थान	,,	,,
आनुपूर्वी चतुष्क	,,	,,	द्वि स्था	,,	क्षेत्रविपाकी
विहायोगतिद्विक	,,	,,	चतु स्थान	,,	जीवविपाकी
उपघात, परा-घात	,,	,,	,,	,,	पुद्गलविपाकी
आतप	,,	,,	द्वि स्था	,,	,,
उद्योत	,,	,,	चतु स्थान	,,	,,
उच्छ्‌वास, तीर्थंकर, त्रसत्रिक	,,	,,	,,	,,	जीवविपाकी

प्रकृति नाम	घाति उ अनु उ	घाति ज अनु उ	स्थान उ अनु उ	स्थान ज अनु उ	विपाकी
प्रत्येक	सर्वघाति प्रतिभाग	सर्वघाति प्रतिभाग	चतु स्थान	द्वि स्था	पुद्गलविपाकी
सुभगचतुष्क दुर्भगचतुष्क	,,	,,	,,	,,	जीवविपाकी
स्थावर, सूक्ष्म, अपर्याप्त	,,	,,	द्वि स्था	,,	,,
साधारण	,,	,,	,, चतु स्थान	,,	पुद्गलविपाकी

परिशिष्ट १३

अनुभागोदीरणापेक्षा उत्तरप्रकृतियो के उत्कृष्ट जघन्य अनुभाग—स्वामित्व का प्रारूप

प्रकृति नाम	उत्कृष्ट अनु उदी स्वा	जघन्य अनु उदी स्वा
मति-श्रुतावरण	अतिसक्लि परिणामी मिथ्यात्वी पर्याप्त सज्ञी	सर्वोत्कृष्ट पूर्वलब्धिधर समयाधिक आव शेष क्षीणमोही
अवधिद्विक-आवरण	अवधिलब्धि रहित अति-संक्लि परिणामी मिथ्या पर्याप्त सज्ञी	परमावधि समयाधिक आव शेष क्षीणमोही
मनपर्याय ज्ञानावरण	अतिसक्लि पर्या सज्ञी	विपुलमतिमनपर्यायज्ञानी समयाधिक आव शेप क्षीणमोही
केवलद्विक-आवरण	,,	समयाधिक आव शेष क्षीणमोही
चक्षुदर्शनावरण	अतिसक्लि परिणामी पर्याप्त, चरमसमयवर्ती त्रीन्द्रिय	सर्वोत्कृष्ट पूर्वलब्धिधर समयाधिक आव शेप क्षीणमोही
अचक्षुदर्शनावरण	सर्वाल्प लब्धियुक्त भवाद्य समयवर्ती सूक्ष्म एकेन्द्रि-यादि	,,
निद्रा-प्रचला	तत्प्रायोग्य सक्लिष्ट मध्यम परिणामी पर्याप्त	उपशात मोहवर्ती, द्वा समयाधिक आव शेप क्षीणमोही
स्त्यानर्द्धित्रिक	,,	तत्प्रायोग्य विशुद्ध प्रमत्त यति

प्रकृति नाम	उत्कृष्ट अनु उदी स्वा	जघन्य अनु. उदी स्वा
'अन्तरायपचक'	सर्वाल्प लब्धियुक्त भवाद्य समयवर्ती सूक्ष्म एकेन्द्रिय	समयाधिक आव शेप क्षीणमोही
'मिथ्यात्वमोह'	अति स परिणामी मिथ्या. पर्याप्त सज्ञी	एक साथ सम्यक्त्व-सयमाभिमुख चरम समयवर्ती मिथ्यात्वी
'मिश्रमोहनीय'	अतिसक्लिष्ट मिथ्यात्वाभिमुख चरम समयवर्ती मिश्र दृष्टि	सम्यक्त्वाभिमुख चरम समयवर्ती मिश्रदृष्टि
'सम्यक्त्वमोहनीय'	मिथ्यात्वाभिमुख चरम-समयवर्ती सम्यग्दृष्टि	क्षायिक सम्यक्त्वाभिमुख समयाधिक आव शेप. वेदक सम्यग्दृष्टि
'अनन्ता चतुष्क'	अतिसक्लि मिथ्यादृष्टि पर्याप्त सज्ञी	एक साथ सम्यक्त्व-सयमाभिमुखी चरम समयवर्ती मिथ्यादृष्टि
अप्रत्या चतुष्क'	,,	सयमाभिमुख चरम समय वर्ती अविरत सम्यग्दृष्टि
प्रत्या चतुष्क	,,	सयमाभिमुख चरम समयवर्ती देशविरत
सज्व त्रिक	,,	स्वोदय चरम समयवर्ती अनिवृत्ति क्षपक
सज्व लोभ	,,	समयाधिक आव शेप क्षपक सूक्ष्मसपरायवर्ती

प्रकृति नाम	उत्कृष्ट अनु उदी स्वा	जघन्य अनु उदी स्वा
हास्य, रति	सर्व पर्याप्तियो से पर्याप्त सहस्रार देव	चरम समयवर्नी अपूर्व-करण क्षपक
अरति, शोक, भय, जुगुप्सा	सर्व पर्याप्तियो से पर्याप्त उ स्थि वाला अति स सप्तम पृथ्वी का नारक	"
नपु सक वेद	"	स्वोदीरणा चरम समय-वर्ती अनिवृत्ति क्षपक
स्त्रीवेद, पुरुषवेद	आठ वर्ष की आयु वाला आठवें वर्ष मे वर्तमान अति स पर्याप्त, सज्ञी तिर्यंच	स्वोदीरणा चरम समय-वर्ती अनिवृत्ति क्षपक
सातावेदनीय	उत्कृष्ट स्थितिक सर्व विशुद्ध पर्याप्त अनुत्तरवासी देव	स्वोदय मध्यम परिणामी चार गति वाले
असातावेदनीय	उत्कृष्ट स्थितिक अति स पर्याप्त सप्तम पृथ्वी-नारक	"
नीच गोत्र	"	स्वोदयवर्ती मध्यम परि-णामी तदुदययोग्य जीव
उच्च गोत्र	चरम समयवर्ती सयोगिके	"
नरकायु,	उ स्थि पर्या अति स सप्तम पृथ्वी नारक	सर्व विशुद्ध जघन्य स्थितिक प्रथम पृथ्वी नारक
देवायु	सर्व विशुद्ध उत्कृष्ट स्थितिक अनुत्तर देव	अति सक्लि जघन्य स्थितिक देव

प्रकृति नाम	उत्कृष्ट अनु उदी स्वा	जघन्य अनु उदी स्वा.
तिर्यंचायु	सर्व विशुद्ध त्रिपल्योपम की आयु वाला युगलिक तिर्यंच	अति संक्लि जघन्य स्थितिक तिर्यंच
मनुष्यायु	सर्व विशुद्ध त्रिपल्य आयु वाला युगलिक मनुष्य	अति संक्लि जघन्य स्थितिक मनुष्य
नरकगति	उत्कृष्ट स्थिति वाला पर्याप्त सप्तम पृथ्वी नारक	मध्यम परिणामी नारक
तिर्यंचगति	अति स आठ वर्ष की आयु वाला आठवें वर्ष मे वर्तमान सज्ञी तिर्यंच	मध्यम परिणामी तिर्यंच
मनुष्यगति	सर्व विशुद्ध त्रिपल्य की आयु वाला पर्याप्त युगलिक मनुष्य	मध्यम परिणामी मनुष्य
देवगति	उत्कृष्ट स्थितिक पर्याप्त अनुत्तर देव	मध्यम परिणामी देव
एकेन्द्रियजाति	अति स ज स्थितिक पर्याप्त बादर एकेन्द्रिय	मध्यम परिणामी एकेन्द्रिय
विकलेन्द्रियजाति	अति स ज आयुष्क यथा सभव पर्याप्त विकलेन्द्रिय	मध्यम परिणामी यथा सभव विकलेन्द्रिय
पचेन्द्रियजाति	उत्कृष्ट स्थितिक पर्याप्त अनुत्तर देव	मध्यम परिणामी पचेन्द्रिय

प्रकृति नाम	उ अनु उदी स्वा	ज अनु उदी स्वा
औदारिक षट्क	अति विशुद्ध त्रिपल्यायुष्क पर्याप्त मनुष्य	अति सक्लिष्ट अल्पायु अपर्याप्त सूक्ष्म वायुकाय
औदारिक अगोपाग	"	अति सक्लि अल्पायु स्वोदय प्रथम समयवर्ती द्वीन्द्रिय
वैक्रिय षट्क	उत्कृष्ट स्थितिक पर्याप्त अनुत्तरदेव	अल्पायु अति स पर्याप्त बादर वायुकाय
वैक्रिय अगोपाग	उत्कृष्ट स्थितिक पर्याप्त अनुत्तर देव	अल्पकाल बाध दीर्घायु असज्ञी मे से आगत स्वोदय प्रथम समयवर्ती अति सक्लिष्ट नारक
आहारक सप्तक	अति विशुद्ध पर्याप्त आहारक शरीरी अप्रमत्त-यति	अल्पकाल बाध तत्प्रा-योग्य सक्लिष्ट आहारक शरीरी प्रमत्त यति
तैजस सप्तक, अगुरुलघु, निर्माण, मृदु लघु विना शुभ वर्णनवक, स्थिर, शुभ	चरम समयवर्ती सयोगी	तत्प्रायोग्य सक्लिष्ट अनाहारक मिथ्यादृष्टि सज्ञी पचेन्द्रिय
प्रथम सहनन	सर्व विशुद्ध त्रिपल्य आयुष्क पर्याप्त युगलिक मनुष्य	अति स अल्पायु स्वोदय प्रथम समयवर्ती असज्ञी पचेन्द्रिय
मध्यम सहनन चतुष्क	अति स अष्ट वर्षायुष्क आठवें वर्ष मे वर्तमान सज्ञी तिर्यंच	अति विशुद्ध पूर्व कोटि वर्ष की आयु वाला स्वोदय प्रथम समयवर्ती मनुष्य

प्रकृति नाम	उ० अनु० उदी० स्वा०	ज० अनु० उदी० स्वा०
सेवार्त संहनन	अतिसंक्लिष्ट अष्टवर्षायुष्क आठवें वर्ष में वर्तमान संज्ञी तिर्यंच	अति सं बारह वर्ष की आयु वाला बारहवें वर्ष में वर्तमान द्वीन्द्रिय
प्रथम संस्थान	सर्व विशुद्ध पर्याप्त आहारक शरीरी अप्रमत्त यति	अति सं अल्पायु स्वोदय प्रथम समयवर्ती असंज्ञी पंचेन्द्रिय
मध्यम-संस्थान चतुष्क	अति सं अष्टवर्षायुष्क आठवें वर्ष में वर्तमान संज्ञी तिर्यंच	अति विशुद्ध पूर्वकोटि वर्षायुष्क स्वोदय प्रथम समयवर्ती असंज्ञी पंचेन्द्रिय
हुडक संस्थान	अति सं उ स्थितिक पर्याप्त सप्तम पृथ्वी-नारक	उ आयुष्क स्वोदय प्रथम समयवर्ती सूक्ष्म विशुद्ध परिणामी
मृदु लघु स्पर्श	अति विशुद्ध पर्याप्त आहारक शरीरी अप्रमत्त यति	तत्प्रायोग्य विशुद्ध अनाहारक संज्ञी पंचेन्द्रिय
गुरु कर्कश स्पर्श	अति सं अष्टवर्षायुष्क आठवें वर्ष में वर्तमान संज्ञी तिर्यंच	केवलि समुद्घात में षष्ठ समयवर्ती
गुरु कर्कश स्पर्श बिना अशुभ वर्णसप्तक, अस्थिर अशुभ	अति संक्लिष्ट मिथ्यादृष्टि पर्याप्त संज्ञी	चरम समयवर्ती सयोगी
नरकानुपूर्वी	उ स्थितिवाला विग्रहगति तृतीय समयवर्ती सप्तम पृथ्वीनारक	मध्यम परिणामी विग्रहगतिवर्ती नारक

प्रकृति नाम	उ० अनु० उदी० स्वा०	ज० अनु० उदी० स्वा०
देवानुपूर्वी	उ स्थितिवाला विग्रह-गति तृतीय समयवर्ती अनुत्तर-देव	मध्यमपरिणामी विग्रह-गतिवर्ती देव
तिर्यंचानुपूर्वी	अति स अष्टवर्षायुष्क विग्रहगति तृतीय समय-वर्ती सज्ञी तिर्यंच	मध्यमपरिणामी विग्रह-गतिवर्ती तिर्यंच
मनुष्यानुपूर्वी	अति विशुद्ध त्रिपल्य-आयुष्क विग्रहगति तृतीय समयवर्ती मनुष्य	मध्यमपरिणामी विग्रह-गतिवर्ती मनुष्य
अशुभ विहायोगति	अति स उत्कृष्ट स्थि-तिक पर्याप्त सप्तम पृथ्वीनारक	मध्यम परिणामी
शुभ विहायोगति	सर्व विशुद्ध पर्याप्त आहारकशरीरी अप्रमत्त यति	"
उपघात	उ स्थितिक पर्याप्त सप्तम पृथ्वी नारक	विशुद्ध दीर्घायु शरीरस्थ सूक्ष्म
पराघात	सर्वविशुद्ध पर्याप्त आहा-रक शरीरी अप्रमत्त यति	दीर्घायु अति स पर्याप्त चरमसमयवर्ती सूक्ष्म
आतप	सर्व विशुद्ध वादर पर्याप्त खर पृथ्वीकाय	अति स स्वोदय प्रथम समयवर्ती खर वादर पृथ्वीकाय

प्रकृति नाम	उ० अनु० उदी० स्वा०	ज० अनु० उदी० स्वा०
उद्योत	सर्व विशुद्ध पर्याप्त वैक्रिय-शरीरी अप्रमत्त यति	अति स स्वोदय प्रथम समयवर्ती खर बादर पर्याप्त एकेंद्रिय
उच्छ्वास	उ स्थितिक पर्याप्त अनुत्तरवामी देव	उच्छ्वास पर्याप्ति से पर्याप्त मध्यम परिणामी
तीर्थंकरनाम	चरमसमयवर्ती मयोगी तीर्थंकर भगवान्	आयोजिकाकरण से पूर्व तीर्थंकर केवली
त्रसत्रिक	उ स्थितिक पर्याप्त अनुत्तर-देव	परावर्तमान मध्यमपरिणामी उस-उस प्रकृति के उदय वाले जीव
प्रत्येक	सर्व विशुद्ध पर्याप्त आहारक शरीरी अप्रमत्त यति	अति स अल्पायु शरीरस्थ अपर्याप्त सूक्ष्म वायु
सुभग, आदेय, यश कीर्ति	चरमसमयवर्ती सयोगी	स्वोदयवर्ती परावर्तमान मध्यम परिणामी
सुस्वर	उत्कृष्ट स्थिति वाला पर्याप्त अनुत्तर-देव	,,
स्थावर	जघन्य स्थितिक अति स पर्याप्त बादर एकेन्द्रिय	परावर्तमान मध्यम परिणामी स्थावर
सूक्ष्म	जघन्य स्थितिक अति सक्लिष्ट पर्याप्त सूक्ष्म	परावर्तमान मध्यम परिणामी सूक्ष्म

प्रकृति नाम	उ० अनु० उदी० स्वा०	ज० अनु० उदी० स्वा०
अपर्याप्त	अति स चरमसमयवर्ती अपर्याप्त मनुष्य	परावर्तमान मध्यम परिणामी अपर्याप्त
साधारण	जघन्य स्थितिक अति स पर्याप्त बादर निगोद	उ आयुष्क स्वोदय प्रथम समयवर्ती सूक्ष्म विशुद्ध परिणामी
दुर्भगचतुष्क[1]	उ स्थितिवाला अति सक्लिष्ट पर्याप्त सप्तम पृथ्वी नारक	स्वोदयवर्ती परावर्तमान मध्यमपरिणामी

परिशिष्ट : १४

प्रदेशोदीरणापेक्षा मूलप्रकृतियो की साद्यादि एवं स्वामित्व प्ररूपणा का प्रारूप

प्रकृति नाम	जघन्य	उत्कृष्ट	अजघन्य	अनुत्कृष्ट	उ स्वा	ज स्वा
ज्ञानावरण दर्शनावरण	सादि, अध्रुव	सादि, अध्रुव	सादि, अध्रुव	अनादि, ध्रुव, अध्रुव	समयाधिक आवलिका शेष क्षीण मोही	अति. सक्लि मिथ्यात्वी पर्याप्त सज्ञी
वेदनीय	,,	,,	,,	सादि, अनादि, ध्रुव, अध्रुव	अप्रम-त्ताभिमुख प्रमत्त यति	,,
मोहनीय	,,	,,	,,	,,	समया-धिक आव शेष सूक्ष्म-सपरायी	,,
आयु	,,	,,	,,	सादि, अध्रुव	अति दुखी जीव	अति सुखी जीव
नाम, गोत्र	,,	,,	,,	अनादि, ध्रुव, अध्रुव	चरम समय वर्ती सयोगी	अति सक्लि. मिथ्यात्वी पर्याप्त सज्ञी

प्रकृति नाम	जघन्य	उत्कृष्ट	अजघन्य	अनुत्कृष्ट	उ स्वा	ज स्वा
अन्तराय	सादि, अध्रुव	सादि, अध्रुव	सादि, अध्रुव	अनादि, ध्रुव, अध्रुव	समयाधिक आवलिका शेष क्षीणमोही	अति सक्लि मिथ्यात्वी पर्याप्त सज्ञी

परिशिष्ट १५

प्रदेशोदीरणापेक्षा उत्तरप्रकृतियो की साद्यादि एवं स्वामित्व प्ररूपणा दर्शक प्रारूप

प्रकृति नाम	जघन्य	उत्कृष्ट	अजघन्य	अनुत्कृष्ट	उत्कृष्ट प्रदे उदी स्वा	जघन्य प्रदेशो-दीरणा स्वा
अवधि विना चार ज्ञाना-वरण, तीन दर्शनावरण अतराय पचक	२	२	२	३	समयाधिक आवलिका शेष क्षीण मोही	सर्व पर्याप्ति से पर्याप्त अति सक्लि मिथ्या दृष्टि
अवधि द्विकावरण	२	२	२	३	अवधि लब्धि रहित, समयाधिक आव शेप क्षीणमोही	अवधि लब्धि युक्त सर्व पर्याप्ति से पर्याप्त अति सक्लिष्ट मिथ्या-दृष्टि
निद्रा, प्रचला	२	२	२	२	उपशात मोही	तत्प्रायोग्य सक्लि मध्यम परिणामी सज्ञी
स्त्यानर्द्धित्रिक	२	२	२	२	तत्प्रायोग्य विशुद्ध प्रमत्त यति	"
वेदनीयद्विक	२	२	२	२	अप्रमत्त भि-मुख प्रमत्त यति	सर्व पर्याप्ति से पर्याप्त अति सक्लिष्ट मिथ्या-दृष्टि

प्रकृति नाम	जघन्य	उत्कृष्ट	अजघन्य	अनुत्कृष्ट	उत्कृष्ट प्रदे उदी. स्वा	जघन्य प्रदेशो-दीरणा स्वा
मिथ्यात्वमोह	२	२	२	४	'एक साथ सम्यक्त्व-चारित्राभि-मुखी चरम समयवर्ती मिथ्यात्वी	सर्व पर्याप्ति से' पर्याप्त अति संक्लिष्ट मिथ्या-दृष्टि
मिश्रमोह	२	२	२	२	सम्यक्त्वा-भिमुख चरम समयवर्ती मिश्रदृष्टि	मिथ्यात्वाभिमुख चरम समयवर्ती मिश्र दृष्टि
सम्यक्त्वमोह	२	२	२	२	क्षायिक सम्य अभिमुख समयाधिक आव शेष वेदकसम्यग्-दृष्टि	मिथ्यात्वा-भिमुख चरम समयवर्ती अवि-रत सम्यक्त्वी
अनन्ता चतुष्क	२	२	२	२	'एक साथ सम्यक्त्व चारित्रा-भिमुखी चरम समयवर्ती मिथ्यात्वी	सर्व पर्याप्ति से' पर्याप्त अति-संक्लिष्ट मिथ्यादृष्टि
अप्रत्या चतुष्क	२	२	२	२	संयमाभिमुख चरम समय-वर्ती अवि सम्यक्त्वी	"

प्रकृति नाम	जघन्य	उत्कृष्ट	अजघन्य	अनुत्कृष्ट	उत्कृष्ट प्रदे उदी स्वा	जघन्य प्रदेशो-दीरणा स्वा
प्रत्या चतुष्क	२	२	२	२	सयमाभिमुख चरम समय-वर्ती देश-विरत	सर्वपर्याप्ति से पर्याप्त अति-सक्लिष्ट मिथ्यादृष्टि
सज्वलनत्रिक	२	२	२	२	स्वोदीरणा चरम समय-वर्ती क्षपक अनिवृत्ति करण	"
सज्वलन लोभ	२	२	२	२	समयाधिक आव शेप क्षपक सूक्ष्म-सपरायी	"
हास्यषट्क	२	२	२	२	चरम समय वर्ती क्षपक अपूर्वकरण	"
वेदत्रिक	२	२	२	२	स्वोदीरणा चरम समय-वर्ती क्षपक अनिवृत्तिकरण	"
नरकायु	२	२	२	२	उ स्थिति वाला तीव्र दुखी सप्तम पृथ्वी नारक	जघन्य स्थिति वाला सुखी नरक
देवायु	२	२	२	२	ज स्थितिवाला तीव्र दुखी देव	उ स्थिति वाला सुखी अनुत्तरवासी

प्रकृति नाम	जघन्य	उत्कृष्ट	अजघन्य	अनुत्कृष्ट	उत्कृष्ट प्रदे उदी स्वा	जघन्य प्रदेशोदीरणा स्वा
तिर्यंच-मनुष्यायु	२	२	२	२	अष्ट वर्षायुष्क आठवें वर्ष मे वर्तमान अति दुखी क्रमश तिर्यंच और मनुष्य	त्रिपल्योपमायुष्क अति सुखी क्रमश तिर्यंच और मनुष्य
नीच गोत्र	२	२	२	२	सयमाभिमुख चरम समयवर्ती अवि सम्यक्त्वी	सर्वोत्कृष्ट सक्लिष्ट मिथ्या दृष्टि पर्याप्त सज्ञी
उच्चगोत्र,	२	२	२	२	चरम समयवर्ती सयोगी	,,
देवगति, नरकगति	२	२	२	२	विशुद्ध क्षायिक सम्यक्त्वी क्रमश देव और नारक	,,
तिर्यंचगति	२	२	२	२	सर्व विशुद्ध देशविरत तिर्यंच	सर्वोत्कृष्ट सक्लिष्ट मिथ्या पर्याप्त तिर्यंच
मनुष्यगति	२	२	२	२	चरम समय वर्ती सयोगी	सर्वोत्कृष्ट सक्लिष्ट मिथ्यादृष्टि गर्भज पर्याप्त मनुष्य

प्रकृति नाम	जघन्य	उत्कृष्ट	अजघन्य	अनुत्कृष्ट	उत्कृष्ट प्रदेशोदीरणा स्वा	जघन्य प्रदेशोदीरणा स्वा
एकेन्द्रिय जाति	२	२	२	२	विशुद्ध बादर पर्याप्त पृथ्वीकाय	अति संक्लिष्ट बादर पर्याप्त एकेन्द्रिय
विकलेन्द्रिय	२	२	२	२	अति विशुद्ध पर्याप्त विकलेन्द्रिय	अति संक्लि. पर्याप्त विकलेन्द्रिय
पंचेन्द्रिय जाति, औदारिक सप्तक, प्रथम संहनन, संस्थानषट्क, त्रस चतुष्क, सुभग, आदेयद्विक उपघात, पराघात, विहायोगतिद्विक	२	२	२	२	चरम समयवर्ती सयोगी	सर्वोत्कृष्ट संक्लिष्ट मिथ्यादृष्टि पर्याप्त संज्ञी
वैक्रिय सप्तक	२	२	२	२	सर्व विशुद्ध अप्रमत्त यति	"
आहारक सप्तक	२	२	२	२	"	तत्प्रायोग्य संक्लिष्ट प्रमत्त यति

प्रकृति नाम	जघन्य	उत्कृष्ट	अजघन्य	अनुत्कृष्ट	उत्कृष्ट प्रदे उदी स्वा	जघन्य प्रदेशो-दीरणा स्वा.
तैजस सप्तक, वर्णादि वीस, अगुरुलघु, निर्माण, स्थिरद्विक अस्थिरद्विक	२	२	२	२	चरम समय-वर्ती सयोगी	सर्वोत्कृष्ट सक्लिष्ट मिथ्या पर्याप्त सज्ञी
नरक, तिर्यचा-नुपूर्वी	२	२	२	२	विग्रहगति, तृतीय समय-वर्ती क्षायिक सम्यक्त्वी क्रमश नारक, और तिर्यच	विग्रहगतिवर्ती अति सक्लिष्ट क्रमश नारक और तिर्यच
देव-मनुष्यानुपूर्वी	२	२	२	२	विग्रहगति, तृतीय समय-वर्ती क्षायिक सम्यक्त्वी, विशुद्ध सम्यक्त्वी क्रमश देव और मनुष्य	विग्रहगतिवर्ती अति सक्लिष्ट मिथ्यात्वी क्रमश देव और मनुष्य
आतप	२	२	२	२	अति विशुद्ध पर्याप्त खर पृथ्वीकाय	अति सक्लिष्ट, पर्याप्त खर पृथ्वीकाय

प्रकृति नाम	जघन्य	उत्कृष्ट	अजघन्य	अनुत्कृष्ट	उत्कृष्ट प्रदे. उदी स्वा	जघन्य प्रदेशोदीरणा स्वा
उद्योत	२	२	२	२	सर्व विशुद्ध उत्तर-शरीरी अप्रमत्तयति	अति संक्लिष्ट पर्याप्त मिथ्यादृष्टि संज्ञी
उच्छ्वास, सुस्वर दुःस्वर	२	२	२	२	स्वरनिरोध चरम समयवर्ती सयोगी	"
तीर्थंकरनाम	२	२	२	२	चरम समयवर्ती सयोगी	आयोजिकाकरण के पूर्व तीर्थंकर केवली
स्थावर, सूक्ष्म साधारण	२	२	२	२	अति विशुद्ध क्रमशः पर्याप्त पृथ्वीकाय, सूक्ष्म और साधारण	अति संक्लिष्ट क्रमशः पर्याप्त स्थावर सूक्ष्म साधारण
अपर्याप्त	२	२	२	२	चरम समयवर्तीसमूर्च्छिम मनुष्य	अति संक्लिष्ट चरम-समयवर्ती अपर्याप्त गर्भज मनुष्य
दुर्भग, अनादेय अयशःकीर्ति	२	२	२	२	सम्यक्त्वाभिमुख चरम समयवर्ती अविरत सम्यक्त्वी	अति संक्लिष्ट मिथ्यादृष्टि पर्याप्त संज्ञी

प्रकृति नाम	जघन्य	उत्कृष्ट	अजघन्य	अनुत्कृष्ट	उत्कृष्ट प्रदे उदी स्वा	जघन्य प्रदेशो-दीरणा स्वा
अतिम पाँच सहनन	२	२	२	२	सर्व विशुद्ध स्वोदयवर्ती अप्रमत्तयति	अति सक्लि मिथ्यादृष्टि पर्याप्त सज्ञी

संकेत चिन्ह—२ सादि अध्रुव, ३ अनादि, ध्रुव, अध्रुव
४ सादि, अनादि, ध्रुव, अध्रुव

□□

हमारे महत्वपूर्ण प्रकाशन

१—६ कर्मग्रन्थ (भाग १ से ६) सपूर्ण सेट ७५)

७—१६ पचसग्रह (भाग १ से १० तक)
सपूर्ण सेट रियायती मूल्य १००)

१७ जैन धर्म मे तप स्वरूप और विश्लेष १०)
(तप के सर्वागीण स्वरूप पर शास्त्रीय विवेचन)

१८—३६ प्रवचन साहित्य

१ प्रवचन प्रभा ५)
२ धवल ज्ञान धारा ५)
३ जीवन ज्योति ५)
४ प्रवचन सुधा ५)
५ साधना के पथ पर ५)
६ मिश्री की डलिया १२)
७ मित्रता की मणिया १५)
८ मिश्री विचार वाटिका २०)
९ पर्युषण पर्व सन्देश १५)

२७—३६ सुधर्म प्रवचन माला (१० पुस्तके) मूल्य— ६)

३७—४४ उपदेश साहित्य

सप्त व्यसन पर लघु पुस्तिकाएँ--

१ सात्विक और व्यसनमुक्त जीवन १)
२ विपत्तियो की जड . जूआ १)
३ मासाहार : अनर्थो का कारण १)
४ मानव का शत्रु · मद्यपान १)
५ वेश्यागमन मानव जीवन का कोढ़ १)
६ शिकार पापो का स्रोत १)
७ चोरी : अनैतिकता की जननी १)
८ परस्त्री-सेवन सर्वनाश का मार्ग १)

४५ जीवन-सुधार (सयुक्त आठो पुस्तके) ८)

४६—५५ उपन्यास-कहानी साहित्य

१ साझ सबेरा ४)	२ भाग्य क्रीडा ४)
३ धनुष और बाण ५)	४ एक म्यान दो तलवार ४)
५ किस्मत का खिलाडी ४)	६ बीज और वृक्ष ४)
७ फूल और पाषाण ५)	८ तकदीर की तस्वीर ४)
९ शील-सौरभ ५)	१० भविष्य का भानु ५)

५६-५८ काव्य साहित्य

५६ जैन रामयशोरसायन १५) (जैन रामायण)
५७ जैन पाडव यशोरसायन ३०) (जैन महाभारत)
५८ तकदीर की तस्वीर

विविध साहित्य

५९ विश्वबन्धु महावीर १)
६० तीर्थंकर महावीर १०)
६१ सकल्प और साधना के धनी
मरुधर केसरी श्री मिश्रीमल जी महाराज २५)
६२ दशवैकालिक सूत्र (पद्यानुवाद सहित) १५)
६३ श्रमण कुल तिलक आचार्य श्री रघुनाथ जी महाराज २५)
६४ मिश्री काव्य कल्लोल (सपूर्ण तीन भाग) २५)
६५ अन्तकृद्दशा सूत्र (पत्राकार) १२)

सपर्क करें

श्री मरुधर केसरी साहित्य प्रकाशन समिति
पीपलिया बाजार, ब्यावर (राज०)